

नये



म. टी. ए. वी.

निबंध
संग्रह

संग्र १९९२-९९ म. लिखित

- १ विपमिषा १४
- २ कविओं में सेना सत्ता (सु-भाष-समीक्षा) १०
- ३ मोक्षो (अनुवाद) ४६
- ४ बुद्ध और गौतम १५
- ५ अनादीश (अनुवाद) १५
- ६ आरती और कंधो १५
- ७ दैविक (अनुवाद) १५
- ८ आर की इतर-अर १५
- ९ अक्षय-विषय १५
- १० विमान विमिषी १५
- ११ आर की बुद्ध १५
- १२ आर की बुद्धा १५
- १३ अक्षय का अक्षय १५
- १४ अक्षय १५
- १५ अक्षय १५
- १६ अक्षय १५
- १७ अक्षय १५
- १८ अक्षय १५
- १९ अक्षय १५
- २० अक्षय १५
- २१ अक्षय १५
- २२ अक्षय १५
- २३ अक्षय १५
- २४ अक्षय १५
- २५ अक्षय १५
- २६ अक्षय १५
- २७ अक्षय १५
- २८ अक्षय १५
- २९ अक्षय १५
- ३० अक्षय १५
- ३१ अक्षय १५
- ३२ अक्षय १५
- ३३ अक्षय १५
- ३४ अक्षय १५
- ३५ अक्षय १५
- ३६ अक्षय १५
- ३७ अक्षय १५
- ३८ अक्षय १५
- ३९ अक्षय १५
- ४० अक्षय १५
- ४१ अक्षय १५
- ४२ अक्षय १५
- ४३ अक्षय १५
- ४४ अक्षय १५
- ४५ अक्षय १५
- ४६ अक्षय १५
- ४७ अक्षय १५
- ४८ अक्षय १५
- ४९ अक्षय १५
- ५० अक्षय १५
- ५१ अक्षय १५
- ५२ अक्षय १५
- ५३ अक्षय १५
- ५४ अक्षय १५
- ५५ अक्षय १५
- ५६ अक्षय १५
- ५७ अक्षय १५
- ५८ अक्षय १५
- ५९ अक्षय १५
- ६० अक्षय १५
- ६१ अक्षय १५
- ६२ अक्षय १५
- ६३ अक्षय १५
- ६४ अक्षय १५
- ६५ अक्षय १५
- ६६ अक्षय १५
- ६७ अक्षय १५
- ६८ अक्षय १५
- ६९ अक्षय १५
- ७० अक्षय १५
- ७१ अक्षय १५
- ७२ अक्षय १५
- ७३ अक्षय १५
- ७४ अक्षय १५
- ७५ अक्षय १५
- ७६ अक्षय १५
- ७७ अक्षय १५
- ७८ अक्षय १५
- ७९ अक्षय १५
- ८० अक्षय १५
- ८१ अक्षय १५
- ८२ अक्षय १५
- ८३ अक्षय १५
- ८४ अक्षय १५
- ८५ अक्षय १५
- ८६ अक्षय १५
- ८७ अक्षय १५
- ८८ अक्षय १५
- ८९ अक्षय १५
- ९० अक्षय १५
- ९१ अक्षय १५
- ९२ अक्षय १५
- ९३ अक्षय १५
- ९४ अक्षय १५
- ९५ अक्षय १५
- ९६ अक्षय १५
- ९७ अक्षय १५
- ९८ अक्षय १५
- ९९ अक्षय १५
- १०० अक्षय १५

बेच्यन्

TABLE 1

रचनाएं



राजपाल ग्रन्थ मन्डल दिल्ली-६

मूल्यांकन ४५०

प्रथम संस्करण

फरवरी १९९२



प्रकाशक

राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली

कार्यालय व प्रस

वी० टी० रोड शाहपुरा दिल्ली



वित्त-सेवा

कम्प्यूटरी नेट दिल्ली



गुरुद्वारा :

मुकेश्वर प्रसन्न इन्दुराज पुन दिल्ली

समपण

स्वर्गीय नवीन बी को
तथा
माई भगवतीचरण वर्मा को
जिनके स्वरों ने एक दिन
मेरे स्वरों को छह दी थी ।



क्रम

अपने पाठकों से	६
महीन जी एक संस्मरण	१७
कविभर महीन जी	११
'बहु मतवाला'—निराला	१६
भाषार्थ बचुरसेन शास्त्री एक संस्मरण	७०
विरिभर शर्मा 'अवदल' एक संस्मरण	७६
प्रेमचंद एक संस्मरण	८६
क्रिश्चोरीलास मोस्वामी एक सप्ताह की रेट	९१
समकालीन हिंदी कविता की गतिविधि	९६
आधुनिक हिंदी कविता में कुछ	१०२
आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय भावना	१११
धीर काव्य की परंपरा परिभाषा और उत्प	१२४
मेरा रचना-काल	१२६
मेरी कविता के स्रोत	१३७
मैं और मेरी 'अधुषासा'	१४१
मेरी रचना प्रक्रिया	१४७
धनुषाव की समस्या	१५२
कवि सम्मेलनों के कुछ कहुए-भीठे धनुषाव	१५५
कवि सम्मेलनों के कुछ और धनुषाव	१६१
अपने के बीच दो सात	१६६
केन्द्र में विचारों जीवन	१७३

मेरी स्मरणीय ब्रतयान-यात्रा	१८१
बेस्त्रियम का अंतर्राष्ट्रीय काव्य समारोह	१८६
धम्म-भायरी साहित्य	१९२
बित्तियम बटतर स्ट्रु	१९७
जेम्स ज्वायस और 'भूतिघोष'	२००
सरबतीक और 'ज्ञान चिक्कबोट'	२०६
प्रेमचंद और 'पोषाण'	२१०
पंत और 'कला और बुद्धा चरित्र'	२१३
हमाय राष्ट्रीय गीत	२२७
वाणी-वर्चा	२४१
भारत कोकिला सरोजिनी मायहू	२४४
बाबू पुष्पोत्तमदास टंडन एक संस्मरण	२४८
समरनाथ झा	२५३
कस्मीर यात्रा एक संस्मरण	२५९
कर्ण	२६३

अपने पाठकों से

आज आपके हाथों में अपनी एक नई पुस्तक रखते हुए मैं बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहा हूँ। 'नए-पुराने मरीचों' में मैंने पिछले लगभग तीस वर्षों में लिखे अपने निबंधों और बातों का संकलन किया है। इनमें से प्रायः सभी समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित एवं रेडियो से प्रसारित हुए हैं। मैंने बहुत-से पाठकों और श्रोताओं की यह इच्छा थी कि इन लेखों को एक जगह संकलित कर दिया जाए। इस सबको धुँव-सोवकर इकट्ठा करना मुझे इतने बड़े-बड़े का काम माना जाता था कि मैं उसे बराबर टालता आ रहा था। इधर इस संबंध में मेरे प्रकाशक का भी साग्रह रहा है। पुस्तक किछ रूय में आपके सामने है। आशा है, सबसे आपको संतोष होगा।

अपने यद्य-लेखन के विषय में आपका कुछ रोचक बातें बताना चाहता हूँ। आज तो लोग मुझे प्रायः कवि के रूप में ही जानते हैं। पर एक समय मैं सोचता था कि मैं यद्य-लेखक ही बनूँ या और अपनी पहली रचना यद्य की ही प्रकाशित करना चाहता था। मुझे याद है कि अपने विद्यार्थी-जीवन में मुझे हिंदी निबंधों पर अपनी कक्षा में सबसे अधिक नंबर मिला करते थे। मैंने कुछ सहपाठियों ने मुझे एक बार इन निबंधों की छपाने की सलाह दी और मैं प्रेरित भी पहुँचा। प्रेरित वाले से मैंने पूछा कि एक कापी की छपाई का क्या भरोसा? सोचा था त्रिस्तंभिक से हिस्सा लगा लूँगा कि एक किताब की छपाई का खर्च इतना तो १०० किताबों की छपाई का खर्च कितना था इतने पैसे में एक किताब छपेगी तो जितने पैसे मैं इकट्ठा कर सकूँगा उतने में कितनी किताबें छप सकेंगी। पर जब प्रेरित वाले ने आर्य और योग और योग वाले कागजों की बात करने शुरू की तो मैं कुछ न समझा और उसने मुझे समझा दिया—एम्पायर प्रेस का उन दिनों मेरे मुहल्ला तक (प्रयाग) के नर से सबसे निकटस्थ प्रेस।

१९१६ से २५ तक छठी कक्षा से दसवीं तक कायस्थ पाठशाला प्रयाग के

विद्यार्थी के रूप में मुझे गद्य-लेखन के अभ्यास का एक अच्छा सुयोग मिला गया। हिंदी-उत्साही धानवी प्रसाद श्रीवास्तव—‘अष्टौ’ नाम से उनकी एक पुस्तक भी बाढ़ को छपी थी—धीर बिज्जमादित्य सिंह के उद्योग से पाठशाला में एक हिंदी-समिति की स्थापना हुई थी। साहित्य-साधना में जमे रहते तो दोनों का छायावाद-काल के कवियों एवं नाट्यकारों में कम ऊँचा स्थान न होता। विद्यार्थियों की एक हस्तलिखित पत्रिका निकलती थी—‘आदर्श’। उसके संपादक यादवेंद्र सिंह थे—‘हार’ नाम से उनका कहानी-संग्रह भी बाढ़ को भना धामद धीर एकाधिक पुस्तकें उनकी निपत्ती—मेरे सर्वप्रथम बाष्प-संग्रह ‘तेरा हार’ के नामकरण में उसकी प्रेरणा रही होगी। मेरे अक्षर मोटी भी पढ़ रहे थे। पत्रिका के लिए घाण हूँ मेरो को एककपठा देने के लिए मुझे सबको एक आकार प्रकार के कागजों पर लिखने का काम निभा करना था। उससे मेरी कलम बकर सही होगी। ऊँची कथा में पहुँचने पर कुछ मौलिक भी लिखने लगा।

हाई स्कूल तक पहुँचते-पहुँचते मुझे जीवन में अपनी बाढ़क बाँहों में बचक लिया—जीने के धामे कलम चिखना कीका छोटा नीरस लगा। कलम की धीर फिर बाद मुझे डा० सत्य प्रकाश (धामद डा० बाढ़ को हुए) जब मैं भी० ए० में पहुँचा। उससे परिचय धार्यकुमार समा में हुआ था। उन दिनों के रमर्च कर रहे थे साथ ही ‘विज्ञान’ पत्रिका का संपादन भी। मेरा एक विषय खन था। कुछ अपनी अतिथय भावुकता को संयमित करने के ध्येय से कुछ तार्य समाज के तर्क-अंतर प्रभाव से पर सबसे अधिक विज्ञान-दृष्टि डा० सत्य प्रकाश की संगत से मैं जर्मनी के बुद्धिवादी (रिचनसिस्ट) धार्शनिकों में विचारधारा रख लेने लगा। मैं पढ़ रहा था हेकिम की ‘द रिजिम ऑफ द दिवस’। सत्य प्रकाश भी ने इसी पुस्तक पर मुझ एक मेरा लिखने को कहा। मे ‘हेकिम धीर जीव’ दीर्घक से मेरा लिखा जिस उन्नीस विज्ञान में प्रकाशित, द्रव्या १९२५ २६ के पूर्णपरिचिटी जब के किमी मान में। परभी बाढ़ नाम धामे पर जो फुलपुरी मेरे अक्षर हुई थी उसकी तुलना में न बरू अभी अच्छा। था ही मिला उगीके हाथों में मैंने विज्ञान की एक कापा बना की ‘मेरा मत क्या है पड़िणा।’ इस प्रकार सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाला मेरा एक निबंध था—‘बर्तन जैसे गुरुद विषय पर। उसी री में कुछ धीर लेख लिख

बातें जो बाह में नष्ट कर दिए गए।

१९१० के आरंभोत्सव में एम० ए० की पढ़ाई छोड़ने के बाद उसके ठंढे पड़ने पर १९११ में किसी समय नौकरी की तलाश में मैं 'आई' कार्यालय में जा पड़ा—उसके संचालक थे रामरत्नसिंह सहाय—हिंदी प्रकाशन में पहली बार प्रचार का विचार-पत्र, भूम-भङ्गका लाने-बचाने वाले। येटी बी ए की प्रथम श्रेणी—एक विषय में ही था—से प्रभावित होकर उन्होंने मुझे 'आई' के सहायक संपादक के रूप में रख लिया। कुछ देर तक सहायक रहे। सहायक मुझे हर सप्ताह कुछ किताबें देते और कहते इनकी सहायता से लेख भिजकर लाओ। महीने के महीने में उन्होंने मुझसे दर्जन लेख लिखाए। एक दिन मुझे बुलाया और डाँटना शुरू किया 'क्या लेख लिखा है न सिद्ध, न वेद, न साया न भाव तुम्हारा काम खत्म अथवा महीने आकर तमस्वाह न जाना।'—तमस्वाह येटी सायब 'आमीस' रुपये महीने नियत हुई थी। एक महीने की तमस्वाह बसूल करने के लिए मुझे 'आई' प्रेस के तीन कम आमीस बसूल करवाने पड़े। पर सबसे अधिक बाँट सब लगी जब वही लेख कमिशन नामों और विधियों के साथ प्राय श्यों-के-र्यों 'आई' में छपे। एक रोख मुझे आज भी बाब है। स्वामी रामतीर्थ पर वा जिसे आज भी अपना कहते मुझे सज्जा न होनी।

इन लेखों ने इस रूपका को बचकी दी कि यदि कुछ लिखूँ तो वह अपने योग्य हाथ और प्रशंसा कर्क तो लेखक-रूप में व्यवस्थित हो सकता है। मुझे १९११ की बुनिवर्सिटी हिंदी कहानी प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार मिला। मुझे वा दूसरे वर्ष में बुनिवर्सिटी का छात्र न रह गया वा फिर भी येटी कहानी सर्वश्रेष्ठ समझे गई थी और प्रतियोगिता के बाद पढ़ाई नहीं की—इसकी शर्तों की पूर्णता से यह कहानी प्रेमचंदजी ने 'हंस' के विशेषांक में छपी एक और कहानी भी येटी छपी थी, पर उसमें प्रेमचंद की इतना संयोग्य करना पड़ा वा कि उसे अपना कहते मुझे संकोच हुआ। पारिवर्तक कुछ भी नहीं मिला था। कुछ कहानियाँ और लिखी एक को 'माधुरी' में स्थान मिला। एकाग्र को अन्य पत्रिकाओं में। ये कहानियाँ मैंने कई वर्षों बाद 'आरम्भिक रचनाएँ भाग ३' में प्रकाशित कराईं। निबंध के संबंध में कही पड़ा वा कि उसमें छफसता के लिए सम्मक अध्ययन और परिपक्व अनुभव की आवश्यकता होती है। निबंध और न लिखे।

११ १२ में साहित्य मन्त्रालय से एक हास्य पात्रिक 'मराठी' नाम से निकलता था। कुछ महीनों तक मैं उसका भी संपादक रहा। क्रमशः साहित्यिक पाठ-पत्र पैरों का पूरा मसाला मुझे ही देना होता। प्रति संक के सायर १० रुपये मिलते थे। उसके संकों में एक अर्थात् संपादकीय—'प्लेनबैट पर' और अत्यन्त शरणावृत्ति की 'चित्रलेखा' की विस्तृत समालोचना को अपनी कहकर मैं आज भी कुछ वर्ष का अनुभव कर सकता हूँ। १९१२ में 'आयोनिस्म' के गल्ली प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हुए मैंने प्रमुख चन्द्र घोषा 'मुक्त' को एक सम्भाषण लिखा तो उन्होंने उसे भुली मर्यादित भाषा श्रीवास्तव को दिखाया जो उस समय 'आर्य' का संपादन कर रहे थे। भुलीजी को वह पत्र इतना पसंद आया कि उसे उन्होंने 'आर्य' में छपा अपने स्वाभाविक लेखन में मेरा आत्म-विदबाध बना। उसी समय मेरी किसी कुछ पुस्तक-समालोचनाएँ 'सरस्वती' में छपीं। १२ में ही किशोरीलाल बोस्वामी की स्मृति में 'माया' का विशेषांक निकला तो मैंने उनके संबंध में एक सम्मरण लिखा जो अपनी सजीवता के कारण उस समय पसंद किया गया—इस संक के लेखों में सबसे पुराना यहो है।

इसके बाद तो मुझे 'कविता-कामिनी' का सब ऐसा लगा कि यह मुझसे छूट ही गया। १९११ के अंत में मैं 'मञ्जुलाला' के कवि के रूप में 'बदनाम' हो चुका था।

१९१६ में अपनी पत्नी का इलाज कराने को पटना गया तो 'मुन' जी ने वही मे 'विजली' मासिक निकालने की योजना बनाई। मेरा फिर से सब सपन इसी पत्रिका के लिए शुरू हुआ। कहावियाँ तो सायर कई रूप पूर्व लिखी प्रकाशित हुईं। अन्य लेखकों ने प्रमुख या प्रियवचन-संबंधी एक संग्रहण जो उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ था। इस संक में वह भी है। 'विजली' समाप्त दिन नहीं पत्नी।

आगे सब निगने की प्रेरणा मुझे मुख्यतः रेडियो के कारण मिली। सारनरु का रेडियो स्टेशन १९३६ में स्थापित हुआ। वहाँ से कई बार विभिन्न विषयों पर बातचीत प्रसारित करने के निमन्त्रण आए। यह कम और बड़ा जब १९४९ में इलाहाबाद में भी रेडियो स्टेशन खुल गया। परन्तु इनमें मैं अधिकतर शिष्टाचार के गर्भ में पहुँच गई हूँ। पद्य यात्रियों का छपाने के संबंध में रेडियो के

निम्न कठोर से बार्ता प्रसारित हो गई, बस उसकी निश्चित प्रति रेडियो में
 रख ली। मैं इन बार्ताओं की कोई प्रति अपने पास न रखता था—एक बार
 बार्ता लिखने फिर उसकी साफ़ कापी तैयार करने में ही बीरज इतना छूट
 जाता था कि तीसरी प्रति बनाने की हिम्मत न रह जाती थी—टाइप कराने
 की सुविधा मेरे पास न थी—विशेषकर जब उसका धीरे कोई उपयोग न था।
 स्वतः प्रेरित न होने से उन्हें मैं अधिक महत्त्व भी न देता था—रेडियो द्वारा
 लिखाई बार्ता का भ्रम्य वा मऊब स्पष्ट में बबल जाना। अगर कहीं मन में उन
 बार्ताओं के कभी छपित रूप में देखने की बात थी तो यह विश्वास था कि
 वे सरकारी ताकूत में सुरक्षित हैं। १९५६ में पहली बार—सावर किन्हीं
 बार्ताओं को कम से कम एक बगल इकट्ठा कर लूँ—कभी इनका प्रकाशन हो
 सकता है। इलाहाबाद-मजलठ केंद्रों से अपनी बार्ताओं की प्रतिनिधियाँ
 माँगीं तो उत्तर प्राया कि रेडियो किसी नियम के अंतर्गत तीन बर्षों से अधिक
 पुरानी पात्रुनिधियों को मष्ट कर देता है। ५२ के पहले की मेरी कोई बार्ता
 उनके पास सुरक्षित न थी और ५२ से ५४ तक मैं स्वयं निवेष्ट में था—यानी
 केवल ५४ ५५ की दो-तीन बार्ताएँ उनके पास थी।
 मैंने कहा 'पठ न घोषामि' और भागे के लिए छतर्क हो गया। ठब से
 जो बार्ताएँ बी या जो मेखादि निवे उनकी प्रतिनिधियाँ अपने पास रखता
 गया—१९५६ के बाद मेखों को टाइप कराने की सुविधा भी मेरे पास हो गई
 थी। संग्रह तैयार करने का विचार मन में आया तो कुछ पुराने कामद-पत्रों
 की खान-बीन शुरू की। एकाज पुरानी बार्ताओं के प्रथम-प्रेषित-प्रमेख मिल
 गए, जिनके आकार पर उनका उद्धार संभव हो सका। इस प्रकार कुछ पुराने
 और कुछ नए लेखों का यह संग्रह तैयार हुआ। आधा है इसका 'नए-पुराने
 मरोके' नाम मेरे पाठकों को शार्क प्रतीत होगा।
 पुराने मेख और बार्ताओं की स्मृति-प्रतिष्ठाभियाँ मेरे पाठकों-भोताओं के
 विप्राद-आन में कितनी हैं, इसे मैं कैसे बताऊँ। मेरे इतर के मित्रों को भोगों
 ने पतंग किया है और उन्हें संग्रह-रूप में देखने की इच्छा प्रकट की है। सुविधा
 नंदन पठ से सम्बद्ध निबंधों को मैंने १९६० में उनकी पण्डित के अवसर
 पर 'कवियों में सौम्य छत' के नाम से प्रकाशित कराया था। उसका जोस्वायत

हुया है, उससे आपने इन निबंधों को भी प्रकाशित कराने को मैं प्रोत्साहित हुआ हूँ।

संग्रह के संबंध में जो-एक बातें कहना चाहूंगा। पुस्तक के प्रारंभ में त्रिषु भगवत् का संकेत किया गया है उसमें मिले सब निबंध यहाँ नहीं हैं। मैं अपनी पाठ्यविधियों की पूरी जाँच-पड़ताल नहीं कर सका। एकाधिन छठे मैसों की स्मृति है पर न उनका प्रथम प्रमेय ही मुझे मिला ॥ न उनकी कठरण ही मेरे पास है और न ठीक से याद ही है कि वे कहाँ-कहाँ प्रकाशित हुए—विशेष स्मृति है निराज्ञा की पर मिले एक लेख की जो धात्र से बारह-तेरह वर्ष पहले 'सायब संगम' (प्रयाग) में प्रकाशित हुआ था। इसी प्रकार सरोजिनी नामक पर मिली एक वार्ता की याद है, जो समक स्वर्णवत्स पर प्रयाग से प्रसारित हुई थी। बार को भी इन पर मिले निबंधों से उस धारा की कुछ पूर्ति हो गई है।

सोचना पड़ा निबंधों का क्रम क्या हो। उन्हें रचनाक्रम में रक्का जा सकता था जो प्रकार से पुराने से नये की ओर या नये से पुराने की ओर दोनों ही कुछ यांत्रिक (मैकेनिकल) से होते। कुछ निबंधों में विषय-साम्य तो है ही—कैवल विधि के कारण उन्हें दूर करना ठीक नहीं जैसा। इसलिए मैंने दोनों दृष्टि बिंदुओं से क्रम दिखाना शुरू किया। जो विषय मेरे व्यक्ति निकट हो सकते थे उन्हें प्राथमिकता दी तो क्रम विषयों के संतुलन नवीन से प्राचीन की ओर हो गया। संग्रह के नाम में भी 'नय' पहले है, पुराने बाद की। प्राया है यह क्रम आपको पसंद आएगा। जहाँ निश्चित हो सका है अन्तों के अंत में विधि निर्बंध कर दिया गया है। जहाँ विधि के आगे प्रस्तावक बिज्ञ है वहाँ मैंने कुछ धारो-पीछे का हो सकता है। विधिक्रम में ही पढ़ने का आग्रह साधन ही मेरे किसी पाठक की हो पर यदि हो तो पन्ने उभट-धमटकर ऐसा संभव हो सकेगा। अनुविधा के लिए मैं खामा माँध हूँ। पर अधिकतर लोग मेरा विश्वास है मेरे निर्धारित क्रम से हो मैसों को पढ़ेंगे। कोई दिव्य कोई सुभाषणा तो उसपर मैं इतनातापूर्वक विचार करूँगा।

संग्रह या संकलन का पाठक विविधता के लिए तैयार होकर आता है। इन नए-पुराने ऋषियों में आपको विविधता तो मिलेगी ही—आपके इनके बीच किसी प्रकार की एकता का भी आभास हो—य सब मेरी ही सेगनी के लगे बने हैं।

मेरी कविताएँ भी वातायन-स्वरूप रही हैं जिनसे आपने मेरे घर में मेरे हृदय में मन में मस्तिष्क में झाँका है। मेरा घर कोई बाघू का घर नहीं मेरे हृदय में कोई विविध बड़कनें नहीं मेरे मन में कोई धमोकी तरंगें नहीं मेरे मस्तिष्क में कोई धधधुत हलचलें नहीं—फिर भी अपना वातायन मैंने कभी सुना नहीं पाया। केवल कौतूहल स्थायी नहीं होता। ध्वननी में बहुत दिन रुचि नहीं रहती। मुझे विश्वास है इन सब मेरी कही जानेवाली चीजों में आपने अपने को भी देखा है—आपको मैं बाहरी रूप तक सीमित नहीं करता इसे स्पष्ट करने की तो शायद ही आवश्यकता हो। सबसे अधिक इसी विश्वास ने मुझे प्रेरित किया है कि मैं अपना घर, हृदय मन मस्तिष्क साफ, सरल सहज स्वामाधिक एपने का प्रयत्न करूँ कि जब कोई इनमें घुसि तो अपने को देख सके। जब फर्नीचर केवल मुझे ही देखा होना तक निश्चय ही उसका कारण मेरे घर की गंदगी होती। पूर्णता का वातायन कर सकता है? मैं अपनी अपूर्णताओं से अचेत नहीं।

मेरी ऐसी प्रार्था है कि ये निबंध भी एक प्रकार के वातायन सिद्ध होयें। पद्य में निबंध का बड़ी स्वाभ है जो पद्य में भीत का। इन झरोखों से आप मेरे घर के कुछ ऐसे कोनों को देख सकेंगे जो मेरी कविता के वातायनों से अदृश्य रहे हैं। इन दृश्यों से आपका कौतूहल घाँव हो कोई विज्ञासा पुष्प हो किसी बारणा को बपकी लये आपका कुछ मनोविमोद हो आपके कोई भाव-विचार सज्ज-स्फूर्त हों—आवश्यक नहीं कि वे सबा मेरे अनुकूल हों—तो मुझे सतोष होगा। आपकी प्रतिक्रिया जानने को मैं उत्सुक रहूँगा।

१३ विनियटन क्रिस्ट
नई दिल्ली—११

५११ ६१

—अनन्त

नवीन जी एक सस्मरण

नवीन जी कवि थे पत्रकार थे साहित्यकार थे बस्ता थे प्रेममोगी थे देश प्रेमी थे राष्ट्रनेता थे ससह-सहस्य थे पद्मभूषण थे और भी बहुत-कुछ थे पर मेरी दृष्टि में सबसे पहले और सबके ऊपर वे योद्धा थे और वे योद्धा के समान बिए और योद्धा के समान मरे भी ।

मुझे दिल्ली आए धमी सास भर भी पूरा न हुआ था कि मेरी पत्नी भीषण रूप से बीमार पड़ गई और उनका उपचार कराने के लिए मुझे उन्हें ब्रिस्गहन अस्पताल में रखना पड़ा । तभी मुझे पता चला कि इसी अस्पताल में नवीन जी भी हृदय रोग से पीड़ित होकर दाखिल हुए हैं । सुनकर कानों को विश्वास नहीं हुआ । धमी कुछ ही दिन पहले उन्होंने गणतन्त्र-विषय पर होने वाले लाल किल्ले के कवि-सम्मेलन का समापन किया था और क्या मस्ती से अपनी कविता सुनाई थी । पर जीवन में असंभाव्य क्या है ! उन दिनों तो उनसे बात-चीत करने की भी मनाही थी । हम सोन दूर से उन्हें देखते और लौट आते । रोग का पहला आक्रमण भी प्रबल था पर नवीन जी कुछ दिनों बाद अच्छे हो अस्पताल से निकल आए । उनका खरीर लीण हो गया था उनके बदन पर कपड़े डीने हो गए थे उनका रंग बहुत बड़बड़ा था पर जिस चीज से हम लोगों को सबसे ज्यादा तकलीफ होती थी वह यह थी कि जिस नवीन का स्वर किसी भी समा-गोष्ठी में सबके ऊपर और सबसे असर सुनाई पड़ता था जिस नवीन के बहुधास से श्रोतों में गरारें पड़ती-सी जान पड़ती थीं वह अब मूँसा हो गया था । वे बहुत धीमे और बहुत कम बोलते और कभी-कभी बोलते-बोलते उनकी खबर लड़खड़ा जाती । और जब ऐसी समारोहों का दृश्य भाँखों के सामने घूम जाता तबमें नवीन बारम्बार बोल रहे हैं और हजारों शानियों की बड़-मड़ाहट भी उनकी आवाज की नहीं सुनी जा रही है । नियति ने नवीन जी के साथ कितना क्रूर व्यंग्य किया था ।

घौर उनके ऊपर रोग का आक्रमण फिर हुआ घौर फिर हुआ । घामबदन तीन-साढ़े तीन बयों में आधी बदन बार के अस्पताल में दाखिल हुए और बाहर निकले । पिछली मार्च में भी फीरोज बांधी ने मुझसे बतसाया कि नबीन जी के फेफड़े में कैंसर हो गया है और अब वे एक महीने से अधिक न पल सकेंगे । अप्रैल में मैं कई बार उनसे मिलने को अस्पताल गया । आखिरी बार मैंने उन्हें २७ अप्रैल को देखा । उन्हें आत्मसीजन दिया जा रहा था । एक बार उन्होंने धीरे-धीरे सोपी हो पास खड़े लोगों को पहचानने की कोशिश करते-ते लगे । मैंने कहा 'बन्धन प्रणाम करता है ।' उनके मुँह से निकला 'सुब रॉयल' दिए और उन्होंने फिर धीरे-धीरे मुँह नहीं । नबीन जी सोछा के और उन्होंने मौत से भी डटकर सड़ाई की । अंतिम बार जब मैं उनकी चारपाई के पास खड़ा था मुझे अंग्रेजी कवि राबर्ट ब्राउनिंग की वे वक्तियाँ बरबस बाद हो आई—

'I was ever a fighter so one fight more,

The best and the last,

*I would hate that death bandaged my eyes, and forbore
And bade me creep past*

*No ! Let me taste the whole of it, fare like my peers,
The heroes of old*

*Bare the brunt, in a minute pay glad life's arrears
Of pain, darkness and cold."*

इनके आशय हैं—मैं तो सदा का ही लड़ता रहा तो एक लड़ाई और, सबसे बड़ी और आखिरी । मैं इन बात से नफ़रत करूँगा कि मौत मेरी धींगों पर पड़ी बाँध दे, मेरे साथ क-रियायत करे या मुझसे कहे कि आपके हैं खिलवाव नामों । नहीं मुझे सारी मातनारों को भेजने दो सारे कष्टों का सामना करने दो । अपने पूर्व पुरुषों के समान अपने सहकर्मियों के समान मैं भी मौत की धींगों को धोईया और एक क्षण में जीवन के सुगों का मूल्य चुका दूँगा—दर्द को पूरी को कुशार को संघवार को सहन कर, सहन कर !

मरते तो सभी हैं पर एक मरकर भर जाता है और एक मरकर घमर हो जाता है । भर है मरने के अंदाज में । २९ अप्रैल को दिल्ली में जिनने अपना शरीर छोड़ा और नानपुर में जिनकी जिंदा जमी निगदिह वह नर-माहर मर कर घमर हो गया । अंत उन्हीस पृष्ठों के लिए नबीन जी ने वे वक्तियाँ हवाई

लिए लिखी थीं

“कर चुकी है धार तुमको क्या बिता की ज्वाला सोहित ?
 धीर मे पवित्रता दुनिया से कहने के लिए,
 “कौन कहता है कि तुमको कर चुका है भस्म पावक ?
 धाव तो मैं जल रहा हूँ तब छटा सब धीरे धपलक !
 धीर मे स्वयं इनका उत्तर भी गे गए हैं,
 “तुम समझो हो कि अब हो जैसे हम नबीन प्राचीन !
 क्यों सुनो हो कि हम धमर है ॥ हम हैं मौह धरीर ॥
 सबी री हम है मस्त ऊकीर !”

(धपलक)

धीर अब नबीन बी का मौह धरीर भूतबु के पारस का परस पाकर कंचन की यक्ष-काया में परिवर्तित हो चुका है जिसे बर-भरण का किञ्चित् भय नहीं है।

उनके जीवन की ‘छटा’ की मूलकियों को यक्ष-कथा पाने का सौमन्य इन पक्तियों के लेखक को भी प्राप्त हुआ था। ऐसे समय में जबकि उनका पाबिब धरीर हमारे बीच नहीं रहा यह स्वाभाविक है कि वे मूलकियाँ अधिक स्पष्ट अधिक रचित धीर अधिक मार्मिक हो जायें।

अपनी ‘उत्सि रेखा (१९५१) के प्राक्कवन में नबीन बी ने लिखा था कि ‘तीस-पैंतीस वर्षों से निरा रहा हूँ। जबकि उन्होंने लगभग १९१६ के लिखना प्रारंभ किया था। यह वही समय था जब थी सूर्यकांत त्रिपाठी निरुत्ता धीर श्री सुमित्रानंदन पंत ने भी काव्य-रचना प्रारंभ की थी। वे अवस्था में पंत जी स प्रायः तीन वर्ष धीर निरुत्ता थी थे साल-बेड़ साल बड़े थे। पंत धीर निरुत्ता थी की रचनाएँ सताष्टी के तीसरे दशक में ‘पल्लव’ धीर ‘परिमल’ के नाम से प्रकाशित होकर साहित्य-क्षेत्र में चर्चा का विषय बन गई थी पर नबीन बी का पहला काव्य-संग्रह (कु कुम) बीजे दशक के पंत में प्रकाशित हुआ। १९२६ में पंडित रामनरेश त्रिपाठी जी ‘कविता कौमुदी’ (भाग-२) का तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था पर उसमें नबीन बी को नहीं सम्मिलित किया गया था कौमुदी-कु व में भी नहीं। जबकि उसमें पंत जी धीर निरुत्ता जी को असम-असम स्थान दिया गया था। फिर भी सप् ६० तक पहुँचते-पहुँचते पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अथवा कवि-सम्मेलनों में पठित कविताओं के आधार

पर मबीन जी कवि के रूप में विख्यात हो गए थे ।

सन् १९३३ में प्रयाग में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्मान में एक अद्वितीय साहित्यिक समारोह आयोजित किया गया जो 'द्विवेदी मेला' के नाम से प्रसिद्ध हुआ । साहित्यकारों का इतना सम्मानना और सहयोगपूर्ण उत्सव मैंने कुररा नहीं देखा । उसमें एक कवि-दरबार करने का कार्यक्रम बनाया गया था । गए कवियों में निराला पंत और मबीन जी भीमिकाएँ उपस्थित करने का निश्चय हुआ । कविदर नरेन्द्र चर्मा पंत जी की भूमिका में उतरे थे निराला जी के लिए भी कोई संवा सौमसा बुलवा व्यक्ति मिला गया था । पर मबीन जी के बीसबीस और काठी का कोई गौतमान प्रभाव में नहीं मिला था । राजर्षि टंडन जी के सुपुत्र भी प्रसन्न टंडन कवि-दरबार के संयोजक थे । उन्होंने मबीन जी को देखा था । उनकी कविता भी सुनी थी उनके सामने जो भी नवबुद्ध उपस्थित किया जाता उसे वे 'रिवेचट' कर देते—कोई छंद स अयोम्य सिद्ध होता कोई स्वर स । युद्ध जी कहते थे मबीन बनने !—मबीन बनने के लिए चाहिए 'वृषभ कंठ केहरि छवि बस निधि बाहु विधान' । (मबीन जी ने स्वयं अपनी मुद्राओं के लिए लिखा है—ये मम प्राक्तान बाहु देसो धनुसाएँ हैं ।) उनकी जो कविता मुनबाने के लिए चुनी गई थी वह थी—साझी !

“साझी !—मन-मन-मन बिर धाए, समझी स्थाय मेपमाता,
 सब कैसा विमम्ब ? तू भी भर भर सा मझरी कुम्हारा
 तन के रोम-रोम पुलकित हों
 सोचन दोनों मस्तु-बलित हों
 मस-जता जब अँकार कर उठे,
 हृदय विकम्पित हा ह्रसित हो

बन मे लड़ रहे हैं—छानी पड़ा हमारा यह ध्याना ?

सब कैसा विमम्ब ? साझी भर भर सा तू अपनी हाता ।” —साहि
 (१९३३ में रचि)

इस कविता को मैं या तो बड़े टाठ से लेना था पर छंद में या मैं छंदिया पहचान । अंत में हम मबीन जी को छोड़ देने का ही निर्णय करना पड़ा मुझे एक देहाती कवि की भूमिका दे दी गई । मुझे याद है उन कविता

के लिए मुझे भी हुमायेनाल मार्गब ने एक स्पर्ध-पत्रक प्रदान किया था जो मेरे पास कहीं पड़ा है।

१९३२ में मेरी कविताओं का एक संग्रह 'सेरा हार' के नाम से प्रकाशित हो गया था। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है तब तक हाभा व्याभा मधुभाभा मधुभाभा के प्रतीकों के प्रति मेरे मन में कोई आकर्षण न था। मेरे मन में उस समय जो भावनाएँ हिंस्रों में मार रही थीं उनके लिए मेरे इन प्रतीकों के चुनाव में नवीन जी के उपर्युक्त गीत ने कितनी सह थी होगी इसका अनुमान लगाना मेरे लिए कठिन है। सामान्य नवीन जी से प्रेरणा से अपना स्वतः सम प्रेरित हो भी भगवतीकरण बर्मा भी ऐसे गीत रच रहे थे—'अस मत कह देना मेरे पिमानेबासे हम नहीं बिमुख हो वापस जानेबासे'। द्वितीय मेरे के कुछ ही महीने बाद मैंने 'स्वाइयात उमर सेयाम' का अनुवाद किया और उसके बाद ही 'मधुभाभा' और 'मधुभाभा' के कतिपय गीतों की रचना की। तथाकथित हाभाबाद का नुबुख प्रवर्तन करने के लिए हिंदी के छुटने से समाजोपकों ने मुझे बिलकुल पालिसी दी है, काय उनमें से कुछ वे नवीन जी और भगवतीकरण बर्मा के लिए भी सुरक्षित रखते क्योंकि इस मामले में पेशबस्ती करने का काम इन्हीं मेरे दोनों अग्रजों ने किया था। बर्मा के आतुर्य-भौन धारण किए रहे, क्योंकि उन प्रतीकों से जो कहा जा रहा था वह उनकी समझ में न तब आया था और न अब तक आया है। कही बात जमी तो कह दिया वह तो उर्दू की पिटी-पिट्टाई केरबाकी की भीड़ी-भाही गहन है। पर जनता ने मुझे हृदय से इन कविताओं का स्वागत किया क्योंकि वह जानती है कि उसकी कान-सी भावनाएँ इन प्रतीकों में भुक्षित हो रही हैं।

इन मानवीय भावनाओं को दमित न करके, इन्हें स्वीकार करके इनके लिए सज्जित न हो करके इन्हें प्यार करके इनपर अभिमान करके, इनको समष्टिमूलक बना करके इन्हें कलागिसंयमित करके भुक्षित करने का काम पढ़ीबोली हिन्दी कविता में सबसे पहला मवीन जी ने करना प्रारंभ किया इसमें मुझे कोई संदेह नहीं है। प्रतीक गीत है। नवीन जी के भीतर उन्हीं के घरों में जब मिटने के लिए कुछ 'गुट गुट' हुई होगी तो अचानक ही उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों को अपने समकालीनों को बैठा होगा। वे द्वितीय स्कूल की श्रितभूतात्मक नुबुखियों से संतुष्ट नहीं थे। तब वे कहते हैं, 'यद्यपि मैंने

ये किस बात पर ? इस बात पर कि एक शक्तिशाली महिला का रवि वर्मा द्वारा चित्रित ऐसा चित्र है जिसमें वह महिला मंदिर में पूजा करने जा रही है। सब जगहों पर कविता हो रही है। वह कहीं साड़ी पहने है उसके हाथ में कैसा घास है उसमें पंचपात्र है या नहीं इन बातों पर लड़कें हो रही हैं। उनके अपने पास कानपुर में उन दिनों समस्यापूर्तियों का बीजबाना था। ऐतिहासिक परंपरा में कविता रचना गाँवों में चल रही थी। सुनेही जी ने कैसे उसका माध्यम बननापा से खड़ीबोली कर दिया था। सुकवि नाम का पत्र निकलना था और हर मास ही हुई समस्याओं पर सैकड़ों कवि अपनी प्रतिभा का बकराब देते थे। नबीन जी की राय थी “यह समस्यापूर्ति-प्रथा नष्ट कर देनी चाहिए। यह एक व्यर्थ की-सी चीज है। इससे कोई लाभ नहीं होता। उनके मन में था ‘कुछ कुबो-सा’ मँडराने लगता था वह तो किसी की कविता का विषय ही नहीं था। पर वे तो इसके अतिरिक्त और किसी पर निरा भी नहीं सकते थे। किसी प्राचीन के साथ अपना साम्य न देखकर ही उन्होंने अपना उपनाम ‘नबीन’ रखा होगा। ‘निराला’ जी ने भी कुछ ऐसी ही परिस्थिति में अपने को ‘निराला’ कहा होगा। वास्तव में बीसवीं सदी के नवजागरण का एक हिस्सा के। सभी नवमुख कवियों ने अपने समाज में अपने को ध्वननी पाया होगा। मात्र से अपने को समझ करमा चाहता होगा किमी ने नया नाम निकट, किमी नया रूप बनाकर, नाम बढ़ाकर, किमीने नया परिधान धारण कर।

बहुधास अब मैंने मिगना धारम दिया और हजर-उपर से उसका विरोध ना शुरू हुआ सब भी मुझे विस्वास था कि एक सादगी ऐसा है जो मेरी भाव को पहचानेगा और मुझे बड़ावा देगा। नबीन जी ने मेरी पहली गैट पत्र कानपुर के ही किमी कवि-सम्मेलन में हुई। मैंने बार ही पंक्तियाँ सुनाई : कि नबीन जी लड़क उठे।

“मैं जब जीवन का भार लिए फिरता हूँ
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ
कर दिया किमी ने भ्रष्टा जिनको छूकर
मैं सोचो के बा तार लिए फिरता हूँ।”

नपुरी सहज में जोर-जोर से कह रहे थे “जीवा चोट गायो हुआ लगता है।”
के सामने मैं लौटा तो था ही हार्नाकि उन वक्त भी मरी उम्र २७-२८ वर्ष

की होगी पर मेरी काठी कुछ ऐसी है कि मैं हमेशा अपनी-उम्र से १० वर्ष कम लगता रहा हूँ। और 'मनुष्यात्मा' की स्वाहियों पर उनकी भावानु सबस ब्रह्म मुवाधों की जो बाप मेरी पीठ पर पड़ी उससे मेरी रीढ़ धकड़ गई। बोने 'कविता तगड़ी निकले हो सी-पचास बंध भी निकाला करो बत्स।

तभी मुझे प्रथम बार उनकी कविता सुनने का भी अवसर मिला। आवाज ठीकी और भारी सख्त-सख्त का उच्चारण धमक-धमक साफ-साफ पूर्ण धमि व्यवना राम से ऐसी सबी जैसे कोई पक्का नायक कविता सुना रहा है। नवीन भी आत्मसीन होकर कविता सुनाते थे पासपी माट, रीढ़-मर्दन सीधी कट, छाठी फुमाकर, जैसे कोई साधक प्राणायाम करने को बैठे हो। तब तक माइक का प्रचार नहीं बढ़ा था और कई हज़ार आदमी उनकी कविता को मुम्ब-मौन होकर सुन रहे थे। गुड की क कहने के अनुसार, नवीन भी सचमुच 'वृषभ कंड' के 'कंब' नहीं—मानस के बोहे का यह पाठान्तर भी मिसठा है—गो के 'वृषभ कंब' भी थे। मेरे मुहल्ले में एक वर्षया उस्ताद रहा करते थे वे कहा करते थे 'घाठ बरद बर पाई तब भीरव राम उठावे'—यानी घाठ बैस का बस घले में हो तब भीरव राम गाया जा सकता है। हृषि-सम्पदा में सायब बल का एकास बँस होता हुआ जैसे पश्चिम में 'हार्स पावर' का प्रयोग होता है। नवीन भी का गला भीरव राम गाने के लिए बना था। मुझे पता नहीं उन्होंने सचीत सीखा था या नहीं उनकी कविताओं में कहीं-कहीं उर्धों के नाम दिए हैं। मैं यह भी नहीं कह सकता कि अब वे काम्य-मान करते थे तब बह संगीत गुड होता था या नहीं पर उनकी गाली की शोबस्वितता रस-सिक्तता और उनका स्वतन्त्रमन किसी का प्रभावित किए बरीर नहीं रहे सकता था। एक बार दिल्ली रेडियो के कवि-सम्मेलन में वे तानपुरे के साथ कविता-याठ करने को बैठे थे। इंदौर साहित्य सम्मेलन (१९५५) में उनका पला बिलकुल बीठा था उन्होंने बताया कि कानपुर की किसी सभा में पंथी जी बोल रहे थे और माइक फेल कर गया इस पर उनके घले से माइक का काम लिया गया। इंदौर की यात्रा में मैं उनके साथ था बीधली महादेवी बर्मा जी थीं। हम लोग एक दिन जौहवा में थी मात्मनलात भगुबंदी के यहाँ ठहरे थे। वहाँ एक कवि सम्मेलन भी हुआ था तब तक महादेवी जी ने कवि-सम्मेलनों में कविता न पढ़ने का महाव्रत नहीं लिया था। नवीन भी ने अपने बैठे घले से भी कविता

सुनाई थी। खुर्ची की का वह सरस बोलबास के सहजे में रख पैदा कर देना मनीष की का बैठे गये से भी बनों की गुरु-संमीर बहुर प्रतिष्ठापित करना महादेवी की का तृपित जातकी के-से कंठ से त्रयपूर्ण काव्य-पाठ करना—गाते उन्हें शायद ही किसी ने सुना हो उनकी भयतिन को छोड़कर—और फिर वह मासके की संख्या में मासके के काव्य-रसिकों के बीच घुसने की बीज नहीं है। इसके बाद मुझे फिर अबसर नहीं मिला कि इन तीनों कवियों को साव सुनूँ—या देखूँ भी।

उस समय तक कवि-रूप में मेरे नाम के घागे प्रफुल्लितक बिह्व सगा था। बहुतों की दृष्टि में शायद धाज भी सगा है। पर मनीष की ने मुझे कवि होने की सनद दे दी थी। नामपुर साहित्य-सम्मेलन के कवि-सम्मेलन के सभापति के पद से जो भाषण उन्होंने दिया था उसमें उन्होंने मुझे बड़े स्नेह-सम्मान के साथ स्मरण किया था। उस हासा-व्यस्ताबाद की भी वकामत की थी जो अब मेरे नाम से सबद्ध हो जाता था पर जिसके धारि भविष्यता है ही है। उस सनका प्रथम काव्य-संग्रह 'कुरुम' (१९३६) प्रकाशित हुआ तब यह भाषण उसकी भूमिका के रूप में दिया गया।

इसी सम्मेलन के बाद मैं अपने जीवन के संघर्षों में इतना घँसा रहा कि शायद ही कभी मनीष की से मिलने का मौका मिला। पर उनकी पोड़ी-नी कविताओं को पढ़कर और छोड़े समय तक ही उनके स्पर्श में धारत, मैंने उनके व्यक्ति और उनके कवि की बिधिप्यता की कुछ भाँकी पा ली थी। वे डिबेरी-कामीन और छायाभुमीन दोनों तरह के कवियों में मिल्न थे। वे जीवन की ठोस अनुभूतियों बिदग्ध भावनाओं लातिफारी बिचारीं सद्ग बन्नाओं सरस अभिप्यक्तियां के कवि थे। उन्हें जीवन के तूत-मुमान ने ही रोने-माने को बिबल किया था। उन्होंने धामी कविता के संबंध में जो कहा था वह कोई दिनभला प्रदर्शन नहीं था वह बिबलुस गत्य था। "जहाँ तक मेरी कविताओं का संबंध है मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि मैं कवि न होऊँ नहिँ अनुक बहाई"। हाँ बाज घोषण कुछ बुझा-मा मन में भँहराने लगता है और कुछ बहने की इवाहिवा हो उठती है। जहाँ तक एम्ब धारत का तात्पुर्क है मैंने उसे बिबलुस हो नहीं पड़ा। न मुझे क्यों के नाम मानूँ ? न मैं यगल-मगल जानता हूँ। हाथ्य मेरा यह दावा बसर है कि मेरे एम्ब हीने-माने नहीं होत।"

उन्होंने राष्ट्रमाया का सिर ऊँचा करने के लिए कविता नहीं लिखी न सड़ो बोली हिंदी की ध्वजा फहराने के लिए, न साहित्य की सेवा करने के लिए, न माया की कला पातुरी प्रदर्शित करने के लिए, और न कवियज्ञ-प्राप्ति बनने के लिए—अपनी रचनाओं के प्रकाशन की ओर से सायब ही कोई उनसे अधिक उदासीन रहा हो—उन्होंने कविता केवल इसलिए लिखी कि जग और जीवन के अनुभवों में उनके हृदय में कुछ ऐसी हलचल मचा दी थी ऐसा दूकान छठा दिया था उनकी नस-नस में ऐसी टीस भर दी थी ऐसी ध्वाजा जगा दी थी कि वे लिखने को अपने को अभिव्यक्त करने को विवश थे। उन्होंने सभी लिखने के लिए मेहनती छठाई, सब किसी गहन गंभीर, तीव्र तीक्ष्ण अनुभूति में उन्हें विवशित कर दिया। मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकता कि नवीन भी ने कभी अपनी कलम को कसरत देने के ध्येय से कुछ लिखा होगा। उनकी हर कविता के पीछे एक इतिहास है एक बटमा है चलते-फिरते व्यक्ति है बीसी-जानसी समस्याएँ हैं, विचारों की कसमकस है (इसे नवीन भी विचारों का 'अर्राटा' कहते) भावों का उद्घापोह है (इसे सायब वे भावों का 'यन्नाटा' कहते) और है एक भावुक हृदय जिसे सबसे लपटते झपटते उलभते धूमते और भरते-भरते हुए गुनगुनाते भी जाना है। नवीन भी ने अपनी कविताएँ लिख स नहीं लिखी उन्होंने अपने अग्र, स्वेद रक्त में अपनी मेहनती बुद्धि लिखा है, जिसमें जग का बहुत-सा गर्ब-गुबार भी आकर पड़ गया है। उचित ही है कि उनकी लिखावट अस्वच्छ है अस्पष्ट है खुरबरी है पर वह हर जगह सारगमित है, सजीव है सार्थक है। किसी दिन पाठ्य-युक्तों की कृष्ण बमाने से पुरसठ पाकर हमारे समाजोपकों को इन कविताओं का अर्थ जोचना होगा पर वह इनके कोश में नहीं मिलेगा जीवन के कोश में मिलेगा। इससे मेरा मतलब क्या है इसे स्पष्ट करने के लिए एक सवाहरण देकर यह सब समाप्त करना चाहूँगा।

१९३६ में नवीन भी का 'कुटुम्ब' निकला जिसकी एक प्रति उन्होंने मेरे पास भी भेजी थी। अभी मैं उन्हें बग्यबाब का पत्र भी न लिख पाया था कि कानपुर से किसीने आकर समाचार दिया कि किसी लड़की की घोड़ी में सड़ी घास बुझाने के प्रयत्न में नवीन भी के दोनों हाथ जल गए हैं। बी-टीन विंग बाय में कानपुर गया और किसी परिचित की सहायता से भी गलेघ बुटीर पहुँचा जहाँ नवीन भी

रहा करते थे। नवीन जी की दोनों हथेलियों का एक परत मांस बसकर भूस गया था। नवीन जी पालवी मारे दोनों हाथ संघ्या करने की मुद्रा में कुटनों पर रखे बैठे थे जैसे घायी यज्ञ करके छड़े हों। उन्होंने माधुम हुआ कि गलेघसकर बिषासी की सड़की की छाड़ी में घाग लय गई थी उन्होंने झपटकर मुट्ठी से घाग मसलना धारंभ कर दिया और इस प्रकार उनके दोनों हाथ जल गए। पर सड़की जल मरने से बच गई। यह कथ हो सकता था कि नवीन जी किसी को घाग में जसते देखें और उसे बचाने के लिए उसमें दूध न पड़ें। नवीन जी ने घाग में सड़की की और उसे परतस्त किया। घाग लड़ी घबंकर होती है। मेरे पक्षी में एक सड़की बसकर मर गई थी और बाठ घायी बेज रहे थे। पर योद्धा और कायर में यही तो अंतर होता है। नवीन जी निष्क्रिय होकर बैठे थे पर यह विदग्ध अनुभव व्यक्त होने के लिए उनके हृदय-अस्तिष्क को मज रहा था। वे तो इतम भी नहीं पकड़ सकते थे। जलते समय उन्होंने कहा 'इस अनुभव से यह विदग्ध हो गया कि घायर देव के लिए कभी घाग में दूधना पड़ा तो मन हिचकेंगा नहीं।' उस दिन मैंने एक जिहा छहीर एक साशात देवता व वर्तन किए थे। परत छूटकर सौंन आया।

'भुक्तुम' के बाद नवीन जी की रचनाएँ—'रश्मि रेखा' 'जशमि' 'घननक' 'विनोबा स्तवन' उस समय प्रकाशित हुई जब मैं १२ से १४ तक अपने अध्ययन के सिसमिव में कैम्ब्रिज में रहा। लौटकर व्यवस्थित होने और पिछले दो-तीन वर्षों की साहिरिमक गतिविधि स परिष्कृत होने में मुझे कुछ समय लग गया। उसने अधिन प्रसन्नता इस बात की हुई कि नवीन जी ने अपने प्रकाशनों की ओर कुछ उत्तरता दियासाई की। इम्हट जाने क पूर्व में उन्हें उर्जन के एक बहि-अभ्येसन में मिला था जिसका आयाजन बड़े र्वमाने पर डा० चिचर्वनम सिद्ध 'मुमन मे रिया था। नवीन जी सगन्तीक पबारे थे। मैंने उनसे प्रार्थना की थी 'देवा स्तवन हो गया घाग भी व्यवस्थित हो गए, बिल्ली में मुषाक लगे रहे हैं पर कुछ घायी रचनाओं के प्रशसन की ओर भी ध्यान दें।' उन्होंने जिम तरह होंकर बाग उठा दो की उनम में बिगर आयाजान गरी था।

भारत लौटने पर नवीन जी की रचनाओं की पुनर-का में देगार मडोर था।

'जशमि' की 'श्रिय जोरन-नर धार' और 'घननक' की 'जवा न मुनीने

‘बिनय हमारी’ कविताएँ पढ़ ॥ ठिठक गया । इन कविताओं के अंत में स्थान रचना-विधि के साथ रिया गया है—‘अग्नि-बीछा काम । जहाँ तक मुझे मासूम है—‘आज भगवत बस बरस इन रचनाओं को प्रकाशित हुए हो गए हैं—किसी ने न इसके लिए जिज्ञासा प्रकट की है न पूछा है न इसपर प्रकाश डाला है कि यह ‘अग्नि-बीछा काम’ क्या है । और नबीन जी ने शायद यह संकेत इसीलिए छोड़ दिया है कि बिना इस ‘अग्नि-बीछा’ का रहस्य जाने इन कविताओं का रहस्य न पूरा सकेगा । मुझे इन कविताओं को पढ़ते ही पता लग गया कि यह अग्नि-बीछा नहीं है जिससे आग को अपनी हथेलियों से पकड़कर उन्होंने एक बाला की प्राण रक्षा की थी । यह उन्हीं की उदात्त प्रकृति थी कि उन्होंने उस अनुभव को अपने लिए अग्नि से बीक्षित होने का पुण्य सबसर माना । इस बट्ना पर उनकी भावना और कल्पना किस प्रकार लगी है इसे जानना हो तो उनकी इस काम की रचनाएँ पढ़िए,

“क्या न सुनोये बिनय हमारी ?

हुए बग्न दोनों कर, प्रियवर ! पूर्ण हुई एक घटा तुम्हारी
क्या न सुनोये बिनय हमारी ?

हमें भान है इस जीवन में अपने कुछ क्षण-क्षण पापों का
इसी बाहू मिस तुमसे क्या प्रभु, बेठाबनी मिसी है मारी ?
अब तो सुन लो बिनय हमारी ।

जीवन के समय के अपने अब तो मूर्त रूप कर दो तुम
बिखरे हो जाए विरग्न यह उन्मत्त जीवन अधिचारी
क्या न सुनोये बिनय हमारी ?

तुम जानो हो अकब बेदना के भूने में भूने हैं हम
इतना तो प्रभाव दो जिससे मिट जाए जीवन-अधिचारी
क्या न सुनोये बिनय हमारी ?”

(अपसक)

‘अग्नि-बीछा और ‘अने हुए विल’ का मुहावरा इस्तेमाल करना कितना आसान है । शब्द ‘आग’ और वस्तु ‘आग’ में कितना अंतर है । नबीन जी ने अपने हाथों को आग में झुलसाकर यह पंक्ति मिसी थी—‘हुए बग्न दोनों कर, प्रियवर, पूर्ण हुई एक घटा तुम्हारी’ । और अने हुए हाथों का इच्छे उन्मत्त और पावन उपयोग

क्या हो सकता था कि उन्हें विनय के लिए बोड़ा पाय उठाया जाय। सपटों से जीवन-प्रतिपत्ति को दूर करने और बाह्य से उच्छ्वस जीवन को सर्वमिथ बनवाने की भाँव करने के लीन भी ही अधिकारी थे। इस भावना इस विचार द्वारा इस कल्पना में मीनमेष निवासने का अधिकार मैं केवल उसे दे सकता हूँ जो जमती हुई सपटों में पहले घपना हाथ भस्म कर धाए। तभी वह जान सकेगा कि इस अनुभव की अभिव्यक्ति कैसी होती है।

दूसरी कविता में वे कल्पना करते हैं कि एक नव है जिसे कल्प बड़े के सहारे जैसे पार किया जाय। आवश्यकता है कि धाव उस बड़े को पकड़ा कर दे। इतनी निर्भीकता से धाव को मीन का धाव नवीन भी के कंठ से ही संभव था

किस विधि नव बड़े तरिठ ? पहुँचूँ उस पार सजन ?
कच्चा घट, जल संकट सहृद, भँवर, तीव्र व्यजन
मय है नम आणगा यह नम तरणोपकरण
दुम्तर सी लगती है जीवन की तीव्रवार
प्रिय जीवन-नव अपार ।

यदि बाहित करना था जीवन-नव बैद-मुक्त
तो यह रज भाजन भी कर बैठ अग्नि भुजा
पर यह तो बच्चा है, है मेरे बस भुक्त
हूँ उसमें छिद्र बई, और अनेकों विचार
प्रिय जीवन-नव अपार ।

पहने इनके कि करो गजन वेणु वादन गुम
पहने इनके कि करो स्वर का धारावन गुम
भज अग्नि-पुत्र करो पक्का रज भाजन गुम
छूँ जाय भिन्न यह तरण भरलु भीति घर
प्रिय जीवन-नव अपार ।

जब मैंने इन दो कविताओं की बयनना और व्याख्यान देनी तो मुझे जीमूतन हुआ कि इस बात की रसी और कविताओं की गीत बर। उनका रचना की विधि में हो एक दूसरी कविता है जो उसमें 'अधि-दीप्ता बाल' का संकेत नहीं दिया गया है, बिना कारण मैं नहीं कह सकता। पर निम्नलिखित यह

'अग्नि-बीछा काल' की सर्वश्रेष्ठ रचना है। शीर्षक है 'बियेह'। एक सड़की की बोती में सगी घाग को बुझाने उसकी बोती को उसके शरीर से घसप करने घाग की बिभीषिका के सामने भी उसके मजाने फिर भी बुझानेकाल की ममता पूर्ण निर्ममता निश्छसता अग्नि-पावनता से उसे नग्न कर देने के भौतिक अनुभव को नबीन बी ने इस कविता में अम्यात्म के कितने ऊँचे परात्म पर उठा दिया है। शीर 'अग्नि-बीछा काल' का संकेत घायब इसलिये नहीं किया कि इसको नीची सहज पर उतारकर कोई इसका महा-भीड़ा धर्म न निकालने लग

अब उतार धौं बस्तर घागी तू क्षण भर में होगी विमम
 अब कैसा कुराव घाबन से? पूर्ण हुआ तेरा जप-विजय
 नतसोचने हृदय की मौजी खोल नयन में सहज भाव भर,
 दिखता है अपने पीठम को जनम-जनम का घपना निश्चय
 भवध दूर ही करना होवा यह अंतरपट यह धाञ्छादन
 आत्म रमण की सम्मयता में क्या सबैस परिरेमण परिणय?
 यह पल्ला यह पट यह अंचल भारभूत हो जाएँगे सब
 धरी! तनिक धामे तो हे तू उनकी भावक मुरली की लय।
 घाज बल माधे कटि, सर पर है बीजांगुक तरल लावमय
 नेह सफल तब जाग सलीनी। अब हो जाए इस पट का लय
 पट ही क्या? कंचन काया भी मचसेयी निबेह भाव से
 उस दिन अब उनके सुपरस से होंगे रोम कंटकित यतिमय

(बनासि)

यहाँ पीठम कौन है, बेवसी कौन है, पट क्या है जिसका लय पीठम के पूर्ण परि
 रमण के लिए भावक्य है। यह कल्पना हमारे साहित्य-बर्तन की इतनी व्यापक
 भावना है कि इसका रहस्य खोजना इस कविता-कुमारी के साथ बनावार करना
 होवा। इसके विषय में मैं इतना ही कहना चाहूँगा कि ऐसी कविताएँ मेकनी शीर
 स्वाही की बूँदों से नहीं उतरती ये हृदय की बजाया से हो मिली जाती है।
 नबीन बी महीनों सेकनी पकड़ने में अस्मय के धगर उन्ही निट्टी को बोलकर
 इनको सिखाया होवा तो अक्षरता उनके तपोच्छ्वासों से ही ऐसी पंक्तियाँ
 निकली होगी 'मैं तो हूँ बैरवानरपायी मैं बँठ हूँ धाय पिय, सजि।

ये तीन कविताएँ भी यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है कि नबीन बी कौन

करी धनुषधृतियों के कबि थे। उनके जीवन की बहुत-सी घटनाएँ और बहुत-सी कबिताएँ रहस्य के घमकार में और पांडुलिपियों के धवार में पड़ी हुई हैं। निश्चय ही जब तक एक से दूसरे पर प्रकाश नहीं डाला जाएगा तब तक मनीन जी का जीवन और काव्य दोनों ही हमारे लिए धनबुझ पहेली बने रहेंगे। और मैं अपने सध्यों की पूरी शक्ति और अपने हृदय के पूरे विश्वास के साथ कहना चाहता हूँ कि ये दोनों बुझने योग्य पहेलियाँ हैं और इन्हें बुझकर हम बहुत कुछ पाएँगे जस के बहुत-से नैव ज्ञानिये जीवन के बहुत-से राज पहचानिये क्योंकि मनीन जी भाजीवन उन्हीं रहस्यों की खोज में सगे रहे

“तन्म्य प्राणों ने निरंतर कौन-सी विपदा न भेजी ?

किन्तु उत्तमभी हो रही फिर भी अभी तक यह पहेली

सतत धम्मेपरण किया है बन गई जीवन-सहेली ”

(व्याधि)

देखूँ इन पहेलियों को बुझने के लिए बाधों के कौन-कौन पूछ जाने भाटे हैं।

[पून १९९०]

प्रसिद्ध है। रोमसफियर पर लिखी उनकी पुस्तक धांस भी मान्य है।

नाटक के क्षेत्र में खताथी के अंत में धास्कर बाइन्ड (१८५४-१९००) प्रसिद्ध हुए। वे धायरी के परंतु उन्होंने धायरी प्रभावों से मुक्त रहने का प्रयत्न किया था। उनमें जो कुछ धायरी प्रभाव हैं उनके अवचेतन से ही धायरी आन पड़ता है।

उन्नीसवीं सदी के अंत में धायर में जो साहित्यिक पुनर्जागरण हुआ उसके केंद्र डब्ल्यू बी ईट्स (१८६३-१९३९) माने जाते हैं। कविता नाटक निबंध—सभी क्षेत्रों में उनकी क्पाति समान है। उन्होंने डब्लिग में एबी बिबेटर की स्थापना भी की। इससे प्रोत्साहित होकर कई अन्य नाटककार आगे आए। इनमें मेडी प्रियोरी (१८३२-१९३२) और जे० एम० सिज (१८७१-१९०९) अधिक प्रसिद्ध हैं। दोनों ने धायर के घामीण जीवन की ओर देखा। मेडी प्रियोरी ने भावुकता से सिज ने ध्वन्य से। डब्ल्यू बी ईट्स ने कई प्रकार के नाटक लिखे। जापान के ओ नाटकों से प्रभावित होकर उन्होंने प्रतीकात्मक नाटक लिखने में विशिष्टता प्राप्त की। कविता के क्षेत्र में धायरी प्रभाव को न छोड़ते हुए भी अपने समय में वे असेजी क प्रतिनिधि कवि माने जाते रहे। उनके मित्र जार्ज रसेल जो ए० ई० के नाम से कविताएँ लिखते थे बियोग्राफिकल विचारों से प्रभावित थे।

जार्ज बरनार्ड सा (१८३६-१९२०) का रूढ़ धायर के संबंध में धास्कर पाइलड जैसा ही था। पर जिस प्रकार का ध्वन्य उन्होंने समकालीन समाज के हर पक्ष पर किया है वह कोई धायर ही कर सकता था।

ईट्स के समकालीन लेखकों में जार्ज बूर (१८३२-१९११) का भी नाम लिया जायगा। वे कुछ समय तक धायर के सांस्कृतिक आन्दोलन से संबंध रहे पर बाद की घलन हो गए।

धार्मिक काम में जिम ललक ने सारे मगार का ध्यान दबलित और धायरलेड की ओर अपनी एक रचना से ही सीध लिया वे हैं जेम्स ज्वाएन (१८८२-१९४१)। उनके 'यूमिमीड' ने मानव मस्तिष्क की ऐसी गहराइयों को छुसा कि वे सारे मगार में लिए कौन्सुल का विषय बन गए। ज्वाएन ने भाषा की अविश्व अभिव्यक्तियों की समावनाओं का भी पता लगाया।

१८६

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत में साहित्यिक विविधता के चिह्न दिखाई देते हैं। कारण सामान्य नहीं प्रेरणा का समान है। संभवतः यह भी कि भारत की मनीषा नेमिक के पुनर्जागर और प्रचार की ओर सग नहीं है और अनेकी के साम उसका आवागमन सर्वत्र बीमा हो रहा है।

[१८६८]

विनियम बटसर ईट्स (रेडियो बार्ता)

आधुनिक काल में टी० एस० ईलियट अंग्रेजी भाषा के सबसे बड़े कवि माने जाते हैं, परन्तु उनके प्रसिद्धि पाने के पूर्व यह सम्मान यदि किसी को दिया जाता था तो विनियम बटसर ईट्स को। टी० एस० ईलियट ने स्वयं अपने एक लेख में लिखा था कि यदि मुझे कोई पूछे कि आधुनिक समय में अंग्रेजी का सबसे बड़ा प्रतिनिधि कवि कौन है तो मैं निःसंकोच कहूँगा कि विनियम बटसर ईट्स। यह बात सर्वमान्य है कि टेनिसन के बाद वे ही अंग्रेजी भाषा के सबसे बड़े कवि हुए हैं। कुछ समालोचकों का मत तो यह भी है कि मिस्टन के बाद वे ही रहने बड़े कवि हुए हैं। यदि इसमें कुछ अतिशयोक्ति हो भी ठां उन्हें बड़े-सबसे और टेनिसन के कोटि का कवि मानने में धायब हो किसी को आपत्ति हो।

ईट्स का जन्म सन् १८९५ में डबलिन में हुआ था। उनकी प्रारंभिक शिक्षा ईयर्सड के स्कूलों में हुई। इसके पश्चात् उन्होंने चित्रकला की शिक्षा डबलिन में ली। उनके पिता स्वयं प्रसिद्ध चित्रकार थे। परन्तु उनका रुझान साहित्य की ओर बढ़ता गया और यद्यपि छात्रीवन के चित्रकला में अभिरुचि रखते रहे तो भी उनके स्वजन का क्षेत्र साहित्य ही रहा।

उन्होंने लगभग २० वर्ष की अवस्था से काव्य-रचना आरम्भ कर ली थी और अपनी मृत्यु के एक-दो दिन पहले तक वे रचनाएँ करते गए। उनकी अंतिम रचना उनकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुई। उनकी मृत्यु सन् १९३९ में लगभग ७४ वर्ष की अवस्था में हुई। इन प्रकार उनकी रचना-काल लगभग ४५ वर्ष तक बना।

जिम समय उन्होंने रचना आरम्भ की उस समय अंग्रेजी काव्य में त्रि-रचना-रूपाई की कविता का बहुत प्रचलन था और ईट्स की प्रारंभिक कविताओं में

इस मूल के प्रभाव स्पष्ट हैं। परन्तु ईदिस अपने समय और अपने व्यक्तित्व के प्रति बहुत सज्ज थे। जहाँ एक ओर वे केवल धर्मधारा को बनकर संकुचित नहीं हो सकते थे वहाँ दूसरी ओर उन्होंने अपने देश के उस धार्मिक संघर्ष की शक्ति को भी अपने धार्मिक पुनर्जागरण कहते हैं और जिसकी पूर्णावधि धर्मधारा की स्वतन्त्रता में हुई। ईदिस कुछ वर्षों तक अपने देश की पार्लियामेंट के सदस्य भी रहे।

धार्मिक पुनर्जागरण के साहित्य-मूल के नेता के स्वयं थे। साहित्य का जनता से सम्पर्क स्थापित करने के लिए उन्होंने नाटक की महत्ता समझी और एक नाटकप्रभावा की स्थापना की जो एबी थियेटर के नाम से प्रसिद्ध है। इसके लिए स्वयं उन्होंने नाटक लिखे और अपने मित्रों से लिखावाए। धार्मिक पुनर्जागरण में एबी थियेटर का योगदान सर्वविध है। ईदिस के नाटक धर्मधारा में ही नहीं ईंग्लैंड और अमेरिका में भी फैले गए और कला की दृष्टि से भी उनका स्थान बहुत ऊँचा माना गया है।

ईदिस के कविताएँ लिखी नाटक लिखे और निबंध लिखे। पर मुख्यतया वे कवि थे। उनके नाटकों को काव्य-नाटक ही कहा जा सकता है। उनके वचन में भी कवित्व गुण बरे हुए हैं।

ईदिस का मानसिक विकास ऐसे युग में हुआ जब विज्ञान ने ईसाई धर्म से लोगों की आस्था खिंचा दी थी। ईदिस धार्मिक धर्म की खोज में रहे। वे बहुत दिनों तक प्रियोसोफिज्म सोसाइटी के सदस्य रहे। भारतीय दर्शन के प्रति भी उनका प्रभुत्व रहा। भारत की ओर वे विशेष रूप से आकर्षित थे। सरोजिनी नायडू और रबीन्द्रनाथ ठाकुर से उनकी रूचि थी। उन्होंने सरोजिनी की कविताओं के संक्षेप अनुवाद की एक-एक पंक्ति सुधारी और उनकी भूमिका भी लिखी। उन्होंने पुरोहित स्वाधी की सहायता से धर्म अनुवादों का अनुवाद किया और उनकी भूमिका लिखी। उनकी बहुत-सी रचनाओं पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट है। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था कि उनके नाटकों का कवित्व गुण मन्त्रित नाटकों से आया था। उन्होंने कई संस्कृत नाटकों के अनेकों अनुवादों का सम्पादन किया था।

ईदिस की रचनाओं के दो विभाग किए जाते हैं—पूर्व ईदिस और उत्तर ईदिस। पूर्व ईदिस में वे गुण प्रधान हैं जिन्हें हम रोमांटिक कहते हैं। प्रथम

महामुख के पदवाग ईदुस की रचनाएँ रोमांटिक युगों से मुक्त हो गईं। स्वप्न और मानिस्य का स्वान वास्तविकता और शोक ने ले लिया। फिर भी दोनों के ऊपर ईदुस के व्यक्तित्व की छाप है। स्वप्न-व्यंग्यों में वे सबसे प्रथम स्वप्न द्रष्टा हैं और सच्चाई देखनेवालों में उनका सबसे प्रथम दृष्टिकोण है। यह विशेषता हम फिर पुनः देना चाहते हैं उनके व्यक्तित्व की है और उनके देश की जिसकी परंपरा संस्कृति इतिहास से उनके हृदय का समुत्पन्न भोगा था।

आयरलैंड की माया वेलिक है पर संकड़ों बपों से अंग्रेजी उसपर इस तरह भारी गई है कि वह अंग्रेजी को ही अपनी मातृभाषा समझ बैठा है। उसके कितने ही साहित्यकारों ने अंग्रेजी में उच्छकोटि की रचनाएँ की हैं। फिर भी स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद वेनिस को फिर से स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है। ईदुस ने स्वयं लिखा था कि यदि मैं वेलिक में लिखता तो अधिक अच्छा लिखता। परंपरा के प्रभाव में ईदुस वेनिस ने लिखकर संभवतः न अंग्रेजी से अच्छा लिख सकते और न उनकी रचनाओं का इतना प्रचार होता परंतु फिर भी ईदुस के इस कथन से उनका अपने देश और अपनी माया के प्रति अनुपगत प्रसूत होता है। ईदुस का पीछ जो माया बोलता है ईदुस उसे धायर ही समझ सकते। यदि कभी ऐसा हुआ कि आयरलैंड से अंग्रेजी एकदम निकल गई तो आयरलैंड अपने सबसे बड़े कवि से अपरिचित हो जाएगा। पर वहाँ तक अंग्रेजी का गहरा है अंग्रेजी काव्य में ईदुस का नाम सदा के लिए अमर है। मैंने सुना है कि ईदुस की कुछ कविताओं के अनुवाद वेलिक में हुए हैं। मैं नहीं कह सकता वे कम हुए हैं। उनमें कुछ गायकों के अनुवाद योरोपीय और एशियाई भाषाओं में हो चुके हैं और घेन भी गए हैं। हिंदी में वहाँ तक मेरा ज्ञान है, न उनकी कविता का अनुवाद हुआ है और न उनके गायकों का। ईदुस के साहित्य का विशेष अध्ययन कर मैंने उनपर केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से डॉक्टरेट भी। कभी-कभी सोचता हूँ कि ईदुस का कुछ साहित्य अनुवाद कम में हिंदी को देने का वास्तविक मुद्दापर है मगर

उरर गुनी कर्क कि मैं वारे रुदा कर
एक छाटी-सी उमर में मैं क्या-क्या गुदा कर ।

जेम्स जेम्स और 'यूसीसी' (रेडियो बार्ता)

अंग्रेजी भाषा और साहित्य में कवि रचनेवाला सावद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जिसने जेम्स जेम्स लिखित 'यूसीसी' का नाम न सुना हो या उसे अच्छा पसन्द न हो या फका न हो। संसार के बड़े उपन्यासों में इसकी पहचान होती वा नहीं यह आज भी विद्वानों में विवाद का विषय है। फिर भी बीसवीं सदी में जिस पुस्तक ने साधारण पाठक, सुखी लाल और समानाधिकारों का ध्यान रखने अधिक आकृष्ट किया वह 'यूसीसी' ही है। योरोपीय भाषाओं में इस पुस्तक के कितने ही अनुबाद हो चुके हैं सावद जापानी में भी हो चुका है। हिन्दी प्रकाशक किसी भारतीय भाषा में 'यूसीसी' या उसके किसी अर्थ प्रकाशक जेम्स जेम्स की अन्य किसी रचना के अनुबाद का पता मुझे नहीं है। विद्वानों और प्रकाशकों द्वारा इस पर लिखी पुस्तकों की संख्या भी के और प्रकाशक-निबन्धों की संख्या हजार के समकक्ष पहुँचिगी। इतना मानने में सावद ही किसी को आपत्ति हो कि इस पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् यूरोप की कम से कम अंग्रेजी की उपन्यास कला बड़ी नहीं रहे यदि वा उसके पूर्व भी। बीसवीं सदी के उपन्यासों का अध्ययन उस समय तक पूर्ण नहीं समझा जायगा जब तक इस पुस्तक की महत्ता पूरी तरह न समझी जाय।

जबता तक इसे पहुँचने के मार्ग में जो बाधाएँ आए उनकी भी एक समझ बहानी है। इसके लेखक इतिहास-विवादी थे जो १९०४ में अपनी बार्डम यर्ष की प्रकाशक में अपने कवि-परिवार, संकीर्णता-विजयिण रोमन कैथलिक धर्म और परस्पर-विरोधी राजनीतिक दलों में विभाजित अपने देश-साधारण के समुदाय होकर योरोप बने गए थे। वे कभी इंग्ली कभी हंगरी कभी स्विट्जरलैंड और कभी फ्रांस में रहे उन्होंने धार्मिक योरोपीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया थावरी नहीं संघर्ष की गिटा भी प्रणयार बनाने का प्रयत्न किया जिसेसावद मानता

माटक घाटोवन में भाग लिया। वंत में वे पेरिस में बाबा के अध्यापक के रूप में स्थापित हुए। साथ ही लेखन का व्यवसाय भी उन्होंने अपनाया। वीनिको-पार्जन के विभिन्न साधनों को जोड़ने अपनाने छोड़ने के सफरों में उन्होंने प्रथम महायुद्ध के पूर्व का योरोपीय जीवन देखा उस पर विचार किया और उस प्रतिबिम्बित ही। वही विविधतापूर्ण ज्ञान और अनुभव जेम्स क्लायर के साहित्य की पूर पीठिका है। 'यूनिटीज' के प्रकाशन से पूर्व इनका एक कविता संग्रह एक कहानी-संग्रह मानकथा-संग्रह में सिखा एक उपन्यास और इन्धन की लोभी में सिखा एक माटक प्रकाशित हो चुका था। इनके इन सबों से भी यह पता चलता था कि इनका भुकाव साधारण जीवन की कुत्थित वास्तविकताओं की ओर है और मनीषता के माठ कामोचकों और पाठकों का ध्यान इनकी ओर बाहुल्य हुआ था 'यूनिटीज' ने योरोप और अमरीका के सिधिव समाज में एक भूकंप ही प्रस्तुत कर दिया।

जेम्स क्लायर ने यह उपन्यास १९१४ में प्रारंभ किया और १९२१ में समाप्त किया। यह प्रथम महायुद्ध और उसके परभाव का संलय और प्रतिबिम्ब का समय था। कभी वे टोरंट में रहे, कभी न्यूयॉर्क में और कभी पेरिस में। साठ वर्षों में तीन भयों में घूम-घूमकर सिखा हुआ यह उपन्यास एक जीव मर की कहानी है केवल उसके एक दिन की १८ घंटे की बहुस्थितिभार मोहाहून १९४ के इतिव की।

समाप्त होने के पूर्व ही यह अमेरिका के रिजिटिभरिस्म नामक मासिक में निकलना प्रारंभ हुआ। इसकी २१ मसयाओं में इंग्रिज भाषा 'यूनिटीज' निकल गया। पाठक देत रहे थे कि यह ऐसा लेखक है जो व्यक्ति और समाज की उन सच्चायों की ओर घूरता है जिनकी ओर दृष्टि करना धर्म संस्कृति परंपरा ऐतिह्यता सम्य समाज की शासीनता और नागरिक जीवन को मुबाह रूप से चलानेवासी व्यावहारिकता ने दमित कर रक्ता है। लेखक की माण मोई मधता घनी गमजा उल्लूकता हुई उल्लूकता था-मोराता पुगित प्रतीतता। सहने की सीमा था पहुँची समाज के टेकेदारों के कान लड़े हुए, डाग के परिहारविधि एक की अंतिम बार लरवाएँ उल्लूक करती। साथे प्रकाशन कर कर दिया गया। प्रकाशक पर मुहमा दायर हुआ और उसपर भी दायर का पुर्नमा लैय दिया गया। जेसा से पुस्तक का प्रचार उसके गुण-व्यंग्यों पर निर्भर

रहता सरकारी विरोध ने उसका विज्ञापन कर दिया पाठक उसे जाने-बूझने को बेचैन हो गए ।

'गुप्तमित्री' का पहला परिपूर्ण संस्करण बेरिस ये १९२१ में प्रकाशित हुआ । दो हजार प्रतियाँ छपी थी । सोने की तरह इस पुस्तक का स्वर व्यापार हुआ । कुछ पुस्तकें सी गुनेराम पर बिकी । उसी वर्ष लंदन के इमोस्ट्रेट प्रेस ने २००० प्रतियाँ का एक संस्करण छपा । ५० प्रतियाँ जो धमरीरा भजी गई न्यूयार्क के डाक अधिकारियों ने जता डालीं । १९२३ में उसी प्रेस ने ३०० प्रतियों का एक संस्करण फिर विकास पर उसमें से ४६९ प्रतियाँ फोकाटन के बुर्गी अधिकारियों ने पूजा कर ली । लगभग इस रूप संसार के सम्य तगर म इस पुस्तक को रचना पुनर् का । १९३९ में बी० बी० सी० ने आधुनिक मरुत-वार्ता में पच डेम्स जवायत का नाम रक्खा तो लंडन टाइम्स म उसका विशेष हुआ । बोरी-डिरे जो संस्करण टाइप होते साइकली स्टेशन होने वा अपने जनम स्वादियों ने बंद होकर लकाने धारम बिग । अधिकारियों ग्राह्यकारो प्रकाशकों धधकारमपीमा क एक संभ बहोदेहर के बाद मन् १९३३ म जज बुलडी ने धमरीका म इन पुस्तक पर ने निषेधल हुतामा और एक तीन बार बाध दम्मेड में इस पुस्तक का प्रथम आमासिक संस्करण प्रकाशित हुआ बिने सर्वसाधारण दिना रोक-रोक के खरीद छवत म । परम्पर-विरोधी सम्मियों का धंसार लन गया और दोनों पक्षों में बोलनेवाले द्वाविमाल्य विज्ञान और आलोचक थे । एक कहता था यह पद्याधिक पुस्तक है बिपना ग्राह्य है बुनिया को मूर्ध बनाने का बहर घाली पदधन है । दुमए कहता था यह युगानरपारी रचना है बारे लकाज की बुधिपता पर ध्यंय है, लयक का लय मंत्रि है । पाचार्य संसार क दो बड़े नेराक और विज्ञान द्रव पन म थे पञ्च पाठक और टी लम० इलियट । पाठक ने जवायत की ईमानदारी की मराहता बी इलियट ने लकरी बसा-कुपणता की प्रवसा बी । उम्मेले बहा "मिन्टन क बाइ धरेडी भापा का हगता लान रखनेवाला दुमरा लेकर नहीं पैदा हुआ ।

उपलब्ध के विषय में इसका गुन मैने क पाचार्य यह उल्लेखता स्वाभाविक है कि इस पुस्तक को कहानी क्या है ? और कहानी हो इस पुस्तक में नहीं है । गुप्त पात्र-परिचितियों को लेकर कहानी कहना उल्लास की वरपण को

इस उपन्यास में बिलकुल छोड़ दिया है। कायदे न मनोविज्ञान के एक नए स्तर की सोच की थी। हम जो कुछ करते-कहते हैं वह एक कुत्रिम सामाजिक आचार-विचार से नियंत्रित होने के कारण हमारा सच्चा अभिप्रेयजन नहीं है। यह हमारा ऊपरी परिधान है बाहरी दिखावा है हम जो कुछ सोचते हैं हम जो स्नाना करते हैं वह हमारा धार्मिक स्वच्छता और धार्मिक सच्चा रूप है। उसको उपचेतन प्रमत्त अवचेतन की प्रक्रिया कहते हैं और जब हमारे ऊपर बाहरी प्रेरणा नहीं रहता तब हम वहीं होते हैं वही से हमारी क्रियाएँ परिभाषित होती हैं। जब हमारे उपचेतन और अवचेतन का अपने अनुसंधान धर्म व्यक्ति नहीं मिलती तब हमारे जीवन के घटते-उठते की बिड़बिड़ा उपलब्धि होती है। बिड़बिड़ व्यक्तियों का समाज सामूहिक पिड्डितिया को जन्म देता है। क्या हमारे कलाकारों और साहित्यकारों का यह कर्तव्य नहीं कि वे इस अवचेतन का द्वार खोलें और उसमें भ्रष्ट। वह इतने दिनों से बह है कि उसका परिष्कार करने की बात तो बाब की है पहले वह बाहर तो निकले। अभी तो हम माना अपने उपनिषद्कार के स्वर में स्वर मिलाकर कहना है कि सत्य का मुक्त मोन ने डका है उनका का तोड़ दो और मरने को प्रकट होने दो। पञ्च पञ्चास में पञ्चास को अपना गुप्त मानकर उनका आदेशों पर चेतना की गहर की मोहरी मोस की और मन्त्र सत्य कदु सत्य कुत्सित सत्य वृत्तित सत्य बाहर पूर पड़ा।

उन्होंने चेतना के विभिन्न स्तरों की चारों ओर उन्मुख कर दिया। हम नहीं नहीं हैं जो हम बाहर-बाहर से हम यह भी है या हमारे प्रश्न यह भी या यह हमें प्रभावित कर रहा या और बहुत अंगों में हम परिभाषित भी कर रहा था। क्या इस प्रतिभास सत्य का ज्ञान हमें धर्म को धर्मित सच्चाई के साथ समझने में सहायक नहीं हो सकता? पञ्चास ने कुछ नयी प्रकार का आचार्य अपना मामले रखकर इस उपन्यास की रचना की है। उन्होंने बखूब यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि याराप के एक प्रतिनिधि नगर के नागरिकों के चेतन उपचेतन में एक दिन में क्या-क्या सहर्ष उल्टी-गिरली हैं और इससे २०० पृष्ठ भर गए हैं। किसी धर्मरीढ़ी मेलक ने मिला है कि हम एक दिन में जितना सोचते हैं या हमारे दिमाग में जितना विचार आते-जाते हैं यदि उसको परिमाण में परिभाषित किया जा सके तो यह साध सनातन उसमें तिन्हे की तरह तैरना

रखना सरकारी विरोध ने उसका बिज्ञापन कर दिया पाठक उसे पाने-पढ़ने को मंजूर हो गए।

गुमिस्सीन का पहला परिपूर्ण संस्करण पेरिस स १८२३ में प्रकाशित हुआ। दो हजार प्रतियाँ छपी थीं। सोने की तरह इस पुस्तक का तस्कर व्यापार हुआ। कुछ पुस्तकें सी गुनेराम पर बिकीं। उसी वर्ष लंदन के इवोइस्ट प्रेस ने २०० प्रतिभा का एक संस्करण छपा। १०० प्रतियाँ को धमरीरा भजी गई न्यूयार्क के डाक अधिकारियों ने जमा करलीं। १८२३ में उसी प्रेस ने १०० प्रतियों का एक संस्करण फिर निकाला पर उसमें से ४८८ प्रतियाँ फोर्गटन के बुनी अधिकारियों ने जमा कर लीं। लगभग इस वर्ष संसार के मध्य नगरों में इस पुस्तक को रचना हुई। १८३१ में बी० बी० ने प्राधुनिक लखन-वार्ता में जब जेम्स ज्ञापन का नाम रक्खा तो लंदन टाइम्स में उसका विरोध हुआ। बोरी-रिपे को संस्करण टाइप होते साइन्स-स्टाइन होन का छपन उनमें स्टाइनों ने रवि दोपहर भगाने शारंग दिए। अधिकारियों पाहिरपकारों प्रवाशकों ससवारनबीनों के एक सवे बहोरेह के दाद गत् १८३३ में जब बुनबी ने धमरीका में इस पुस्तक पर से नियंत्रण हटाना और इसके तीन वर्ष बाद इन्फोड में इस पुस्तक का प्रथम प्राणाधिक संस्करण प्रकाशित हुआ जिसे सर्वसाधारण बिना रोक-टोक के छपीर सकते थे। परम्पर-विरोधी सम्मतियों का प्रचार लग गया और दोनों पक्षों में बोलनेवाले न्यायिप्राप्त बिज्ञान और सामोचक थे। एक कहता था यह पंचाधिक पुस्तक है बिनीमा माहिर है दुनिया को भुलने बनाने का यत्न धारी पड्यंथ है। दूसरा कहता था यह मुपानरकारी रचना है लाने लमात्र की कृत्रिमता पर ध्याय है सत्य का ध्यय भक्ति है। वास्तव्य संसार के वा बड़े लेपक और बिज्ञान इसके पन में थे एकरा पाठक धीर टी० एम डब्लिवट। पाठक ने ज्ञापन की ईमानदारी की मराहता था इमियट में उगकी कला-मुद्योगता की प्रवंता थी। उनोंने कहा “मिस्टन के बाह धरेडी भाषा का इतना ज्ञान रचनेवाला दुमथ लेखक नहीं बैठा हुआ।”

उपन्यास के विषय में इतना मुन लेने के परवान् यह उल्लुका राजाबिष है नि एम पुस्तक की कहानी क्या है ? और कहानी हो एम पुस्तक में मही है। कुछ पाठ-मरिडिबिनियों को जेकर कहानी कहनवान उपन्यासों की बरपरा थीं

इस उपन्यास ने बिलकुल छोड़ दिया है। फायज न मनोविज्ञान के एक नए स्तर की मान्यता की थी। हम जो कुछ करते-करते हैं वह एक कृत्रिम सामाजिक आचार विचार से नियंत्रित होने के कारण हमारा सच्चा अभिव्यक्ति नहीं है। यह हमारा ऊपरी परिधान है बाहरी दिखावा है हम जो कुछ सोचते हैं हम जो करना करते हैं वह हमारा अधिक स्वार्थ और अधिक सच्चा रूप है। उसको उपचेतन धरवा धरचेतन की प्रक्रिया कहते हैं और जब हमारे ऊपर बाहरी संकुच नहीं रहता तब हम यही होते हैं हमी से हमारी किमार्च पर चालित होती हैं। जब हमारे उपचेतन और धरचेतन को अपने अनुबोध धर्म व्यक्ति नहीं मिलती तब हमारे जीवन व घर तरङ्ग-तरङ्ग की विकृति का रूप लेती है। विकृत व्यक्तियों का समाज सामूहिक विकृतियों की पद्म होता है। क्या इनारे कलाकारों और साहित्यकारों का यह कर्तव्य नहीं कि वे इस धरचेतन का द्वार खोलें और उसमें प्रवेश करें। वह इतने दिनों से अब है कि उसके परिष्कार करने की बात तो बाब की है पहले वह बाहर तो निकले। अपनी तो हम मानो अपने उपनिषद्कार के स्वर व स्वर मिलाकर कहना है कि सत्य का मुख नाम वे डका है डकन को ताड़ दो और मरव को प्रकट हान दो। जेम्स प्यास न धायक को अपना गुल मानकर उसके आदेशों पर चेतना की तरह की माहरी मोल की और नम सत्य कटु सत्य कुत्सित सत्य सुखित सत्य बाहर घूट पड़ा।

उन्होंने चेतना के विभिन्न स्तरों की बातों को उन्मुक्त कर दिया। हम बरो नहीं हैं जो हम बाहर-बाहर व हम यह भी है या हमारे घर यह भी वा यह हमें प्रभावित कर रहा वा और बहुत संघा में हमें परिचित नौ कर रहा वा। क्या इस अनिवार्य सत्य का ज्ञान होने करने को अधिक सच्चाई के साथ गमझने व सहायक नहीं हो सकता? प्यास ने कुछ इसी प्रकार का धारण अपने नामने रचकर इस उपन्यास की रचना की है। उन्होंने कबल यह दिवात वा प्रयत्न किया है कि योरोप के एक प्रतिनिधि मन्त्र के माधमियों के चेतन उपचलन में एक दिन में क्या-क्या महों उठती-गिरती हैं और इससे ८०० पृष्ठ भर गए हैं। किसी धमरीडी लेखक ने लिखा है कि हम एक दिन में चितना सोचते हैं वा हमारे विमान में जितने विचार घाते-जाते हैं यदि उनको परिमार्ण में परिवर्तित किया जा सके तो यह सारा सनार उसमें तिनके की तरह तैरता

प्रधीन होया ।

उपन्यास की सक्षिप्त रूपरेखा यों है । स्त्रीजोन हिंदमन एक नवयुवक केरिष से लौटकर डबलिन आता है और इस बिता में प्रेमवा-किरला है कि मबिष्य में व्यवस्थित होने के लिए वह गया करे । उसके परिवार में उसकी माता मर चुकी है और वह सबका परिवार-अमाज से समय इकाई है । बहुत दिनों के पश्चात् आने के बाद वह सब प्रकार के नियंत्रणों से मुक्त, सब प्रकार के पदा पात से रहित सब प्रकार के उत्तरदायित्व से हीन गर्भवा मरुतम होकर अपने ममर को देखता है । एक और नागरिक है एबेड सिमोपोलड ब्लूम उसके एक मात्र पुत्र की मृत्यु हो चुकी है बहुत पहले उसकी पत्नी है मबिष्य दोनों के मिये रिक्त है बी रहे है बीठे जाना काम है । पर ब्लूम को अपने मजाजीब मानव धर्म के प्रति जिज्ञासा है लोग बी रहे है किम बाजार पर बी रहे है क्या करके बी रहे है । बीमती ब्लूम का जीवन बाहर बाजों के लिए पटना बिहीन मगे ही मने पर उसके उपवेतन में एक पूरी दुनिया है और वह मस्सर विमाय की पिटाटी धोलकर मियेमा की रीस के समान मारा हदब बेस जाती है । डिडेमस और ब्लूम डबलिन में प्रमते है और साथ प्रति-आय उनके मक्षिष्क में डबलिन के जीवन की जो छाया पड़ती है उगे इस देखते बाते है । अन्त में बीमती ब्लूम का संवा बिवा-स्वय है और उसी के माध उपन्यास समाप्त हो जाता है ।

कताग्रहिता उपन्यास में वर्णित है । यूगितीय होमर वा नायक है जो प्रमणयीस है । ज्यायम ने ब्लूम को मापुनिक युग का यूमितीय बनाया है । वह मानव के उपवेतन में प्रमण करता है । आप चाहें तो डिडेमस को युति मीज के पुत्र टेमीरेक्स और मिनेज ब्लूम को यूमितीय की पत्नी पेनीमापी वा प्रतिरूप—बिहृष मान सकन है—अपने व्यवधनन के तागों का नाम-नाम फेमाती हुई ।

उपन्यास १० भागों में है प्रत्येक भाग इवसिन वा एक बिरोध रूप उा रियाय करता है एक बिरोध प्रतीक प्रपनाता है एक बिरोध रंग में मंडित है पारीर के एक बिरोध रंग की गोर मनेन करता है एक बिरोध बिषय की बर्षा करता है एक बिरोध रोगी का प्रनिपादन करता है । धर्म इतिहास भाषाशास्त्र धर्मशास्त्र जीवविद्या रसायन बर्षे व्यापार साहित्य प्रतीमरी मंगीन रात्र

मीति चित्रकला वीक्षण मंत्र-तन्त्र जीविद्या विज्ञान यौन शास्त्र—सब की बर्चा है, और मौसिक ढंग स।

उपन्यास साहित्य के विकास में ज्वायस का योगदान मुख्यतया दो कर्मों में है। एक तो उन्होंने जेतमा की लहर को उम्मुक्त किया। इससे चरित्र-चित्रण का एक नया उपकरण मिला। दूसरे, उन्होंने यह सिद्ध किया कि भविष्यजना की मौसिक धनी हमें जीवन के गए अनुभवों को ग्रहण करने में किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकती है।

कला और साहित्य के लिए उपचेतन का प्रयोग कहाँ तक वांछनीय है इस पर हम विचार करना होगा। परन्तु इसके पूर्व हमें कला और साहित्य के अन्तिम लक्ष्य को स्पष्ट कर लेना होगा। कबल पश्चिम की हार्-में-हार् विज्ञान से हम टीक पणिग्रामों पर न पहुँच सकेंगे।

[१९१९]

सरपेंटीज और 'दान विक्कडोट'

(रेडियो बार्ता)

मुझे याद पड़ता है कि जब मैं कालेज में पढ़ रहा था उस समय मेरे सम्पादक ने एक दिन मुझे पूछा कि तुमने 'दान विक्कडोट' पढ़ा है ? मैंने कहा "नहीं" और उसपर उन्होंने कहा कि बिना 'दान विक्कडोट' नहीं पढ़ा उनका आधा जीवन व्यर्थ गया। बात इस तरह कही गई थी कि मेरी उत्सुकता को बाबुल लयी और दीप्त हो मैंने यह पुस्तक पढ़ ली। उस समय तो इस पुस्तक से मेरा मनोविनोद ही हुआ पर बाद को उसपर विचार करने का अवसर भी आया और अब मेरी धारणा यह है कि 'दान विक्कडोट' ध्वज-विनोद के लिए बने ही मिला गया हो उसके चमत्कार मानव जीवन के एक सम्पीर तत्त्व पर प्रकाश भी डाला गया है और यही कारण है कि यह पुस्तक देश और काल की सीमा से निकलकर दुनिया में लगी अवद लोकप्रिय बन गई है और पाठक मंडा ऐसी ही बनी रहेगी।

'दान विक्कडोट' के लेखक सरपेंटीज हैं जिनका पूरा नाम था मिचुएल हि सरपेंटीज मावेडा। सरपेंटीज ने और भी बहुत-बूझ लिखा था पर 'दान विक्कडोट' ने ही सफर को छाप दिया। आज के अपनी इसी एक पुस्तक के सफल के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सरपेंटीज का जन्म स्पेन के एक ग्राम में मई १९४७ में हुआ था। उनकी शिक्षा-दीक्षा मैड्रिड में हुई थी जो उस समय स्पेन में शिक्षा का मुख्य केंद्र था और वहीं पर उन्होंने पढ़ने-लिखने का जो भी बंधा किया था। उन दिनों प्रत्येक छात्र नवयुवक को हजियार घण्टी जमाना भी सीखना पड़ता था। सरपेंटीज ने तुरंत और 'मादरों के बीच लिपेटो में' जानेवाले मधुमती मुख में भाव लिया था और उनका सीधा हाथ बट गया था। परंतु इसके बावजूद उन्होंने जोर कर खुशों में भाग लिया। दलों में वे किसी में नहीं बनकर उन्हें पाँच बर घण्टी

रिया में जेल काटनी पड़ी। जेल में उन्होंने बड़ी कठोर यातनाएँ सही निकल भामने के भी कितने ही प्रयत्न किए घीर धर्म में उनके किन्हीं हितचियों ने पाँच ही क्षणत बैकर उन्हें मुक्त कराया।

इस प्रकार दस वर्ष के सैनिकजीवन ने बहुत धनुमणों को मँजोकर सरबेटीज ३४ वर्ष की अवस्था में फिर स्वेन पहुँचे।

हाथ उनका पहले कट चुका था। सब जवानी का जोश भी ठंडा हो चला था। बंदी-जीवन के कष्टों ने उनको जर्जर कर दिया था। इस कारण उन्होंने जेलक बनकर जीविका कमाने का निश्चय किया। इसके बीच उनके मैट्रिक के दिनों में ही पढ़ चुके थे घीर कुछ विद्वानों की ऐसी राय है कि सरबेटीज अपने सैनिक जीवन में भी कुछ न कुछ सिखाते रहते थे घीर 'ज्ञान विक्कजोट' के कुछ अंग धर्म ही जेल के सबर मिले गए थे।

स्वेन सीटने के तीन वर्ष बाद एक धनी कन्या से उन्होंने विवाह कर लिया। पर रक्षे की राय उन्होंने तीन ही बार वर्षों में उड़ा दी घीर धर्मोपार्जन के लिए नाटक लिखने लगे। कहा जाता है कि उन्होंने बीस-तीस नाटक भी लिखे जो समकालीन स्वेन के रंगमंच पर घेने गए, परंतु रंगमंच पर उनकी प्रतिभा विधेय न निघरी। उन्होंने धारम ग ही कविता निराक का भी सम्पादन किया था कई पुरस्कार भी हुँदै थे। पर काम्य के दोष में भी उन्हें कोई विधेय गट मला न मिला। मेवनी के कम पर जीविका पमाने में अद्ययध होकर सरबेटीज को सरकारी नौकरी भी करनी पड़ी जिसके संबंध में दूर-दूर के नगरों में जाना पड़ता था। इन यात्राओं का लाभ यह हुआ कि उन्होंने अपने देश के समकालीन जीवन और उसके विभिन्न पहलुओं को बड़े घीर से देखा। जीवन के संपर्कों ने उनकी धार्मिक धी भी हृष्य पिशास कर दिया था उन्होंने जो कुछ देखा उसे उनके कलाकार ने धाममगान कर लिया और उनके धर्मर बिन समझी सबे शब्द रचना में मणित कर दिए।

'ज्ञान विक्कजोट' का प्रकाशन १९०५ में हुआ दूसरा भाग १९१५ में निकला। यह पुस्तक किसी हलुष को मधपित की गई थी पर अपने सरबेटीज को किसी विधाय प्रकार में पुरस्कृत न किया। 'ज्ञान विक्कजोट' को किसी प्रकार के पुरस्कार की प्राथम्यता ही न थी। वर्ष के धंदर उनके धार संस्करण हुए। गयर-धाम सभी जगह उपदी जर्वा फेन गई। बुद्ध-जमान विज्ञान कम

पके सभी को उसने मुग्न कर लिया। साहित्य का जादू सिर पर चढ़कर बिठना होता है उसका कोई और बाद नहीं।

'दान विक्कजाट' के प्रकाशन से जहाँ लेखक की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई वहाँ उसके बिरोधी भी बहुत-से हो गए। अपनी रचना में 'दान विक्कजाट' को केंद्र बनाकर सरबेटीज ने बहुत-से समकालीन लोगों का मजाक उड़ाया था। बिरोध ने धमक कम भी लिया पर सरबेटीज गंभीर बने रहे। उन्होंने कई कहानी-संग्रह प्रकाशित किए। एक ध्वनात्मक काव्य उन्होंने 'बिपाज डि पारनेसो' के नाम से लिखा—'बिपाज डि पारनेसो' यानी काव्य साक की यात्रा। उसमें उन्होंने दुब की साहित्यिक-रचना पर गहरा व्यंग्य किया। पर सरबेटीज के व्यंग्य में बिरोध की मात्रा अधिक और कटुता को म्यूनतम हुआ करती थी। सरबेटीज के जीवन का उत्तर भाग केवल मेखक का जीवन था जिसमें बाहरी जहन-बहन कम होती है। उनकी मृत्यु १९१९ में हुई—ठीक उसी दिन जिस दिन अमेरी के मंगल

प्रथम चक्र सोज-सोजकर सरबेटीज के जिन संघा का प्रकाशन किया गया है उसकी संख्या जानीम से ऊपर होगी। पर, सारा सारा उनकी जिस रचना का जानता-जानता-सूझता है वह 'दान विक्कजाट' ही है।

सरबेटीज के समय में एक विषय प्रकार के उपन्यासों का बड़ा प्रचलन था जिन्हें 'रोमांस' कहते थे। तुफान और ईसाइया के कल्पित नामक पुत्र के परचाए समस्त योरोप में यात्राओं का एक यंग बन गया था जिन्हें 'आर्ट' कहते थे। किसी प्रकार के धर्म प्रस्थाप के विरुद्ध उड़ा होना उन नाइटों का स्वनिर्मुक्त कार्य था। रोमांसों में प्रायः किसी राजनायक द्वारा किसी गुरदी व बंदी इति और किसी नाइट द्वारा उनकी रक्षा की जाने और था। उस गुरदी और नाइट के विवाह की कथा होती थी। संग्रहों में दया कि लिखित—गुनबगण के परचाए इस प्रकार के सामान पुराने हो गए। पर भिरबगण ऐसी ही परिस्थितियों पर अपनी रचना बौद्धिक गुलफें तैयार कर देते थे। सरबेटीज ने

'दान विक्कजाट' का नाम का रचनेवाला एक साधारण नायक था। वह रोमांसों के पुराने का बड़ा टीडीन था। रचना गरिब उनमें बच्चों की थी। पुराने-पुराने धर्म का ही कथाओं का नायक सामने लगता। उनमें गोवा पुने

भी पुराने साइंटों की तरह बकतर पहन बोड़े पर सवार हो बुष्टों के समक्ष घीर निरीहों की रसा के लिए निकलना चाहिए। वह अपने बुचने-सतमे बोड़े पर सवार हुआ उसने अपने नगदवादा का टूटा-फूटा कपन पहना। नाइट के साथ स्क्वायर अफरि धनुषर के लिए उसने सेकोपेजा को लिया। कल्पना कर ली कि कोई कमसोनिया डेम टोबोसो नाम की सुंदरी है जिसके श्रेम का अधिकारी वह सब बनेया जब अपने सभुषों को पराजित कर लेगा। रोमांसी का भुम छो बीठ चुका था। पुनर्जागरण ने सोपों की शक्तियाँ बीरम के विभिन्न लेनों की घोर प्राकपित कर ली थी। इस देर-आमव नाइट को बहादुरी विधाने का कही प्रबसर ही न था। पर उसने कल्पना से सभु बनाए और उनसे झूठी हावापाक की और उसे तरह-तरह की उपहासास्पद परिस्थितियों में पड़कर कण्ट उठाना पड़ा। अंत में उसके मित्र सैमसन कैरसको ने नाइट का बेष बनाया उस हरामा और उससे बप भर न मझने की प्रतिज्ञा कराई। इसी में बीमार होकर जान स्विक्जोट मर गया।

सरबैटीब ने जो अंग रामोसो पर लिजन्स बाह्य था वह जीवन पर ही अम्य हो गया। अपनी शक्ति की सीमा न समझ हममें से कितने ही समझते हैं कि हम न हों तो न जाने क्या हो जाय। हमी अपनी कल्पना का आस बुनते, हमी उनको छोड़ते हमी अपनी पीठ ठोंकते हैं। हम सब किसी न किसी रूप में जान स्विक्जोट हैं।

मुझे खेर है कि संपूर्ण जान स्विक्जोट का हिंदी में कोई अनुबाद नहीं है। कोई सज्जन सीधे स्पनिश से इतना अनुबाद करें तो हिंदी के संसार की बुद्धि, हो।

[१६६०]

प्रेमचंद और 'गोदान'

(रेडियो वार्ता)

'गोदान' प्रेमचंद की अंतिम परिपूर्ण रचना है। यह उपन्यास सन् १९३६ में उनकी मृत्यु के कुछ ही मास पूर्व प्रकाशित हुआ था। इसे समाप्त करने के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने एक दूसरा उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया था जिसका नाम उन्होंने 'मंगल मूल रक्खा' या 'वेदिक मीठ' में उनके हाथ में मखमली सीन भी और यह रचना अधूरी ही रह गई। प्रेमचंद की सख्ती व बसना जानती थी न बचना जानती थी और यह अक्षरशः सत्य है कि प्रेमचंदी उपन्यासकार स्काट के समान उन्होंने अपनी मेखमली मृत्यु-शाय्या पर भी अपने मास रक्खी और तभी छोड़ी जब उनकी संवसियों में उसे पकड़ रखन की ताब न रह गई।

'गोदान' धर्म का धर्म है ब्राह्मण को गौ का दान करना। हिन्दुओं में यह एक बहुत पुरानी और बहु प्रचलित प्रथा है कि मरणासन्न व्यक्ति स ब्राह्मण को गौ का दान कराया जाता है। ऐसा विश्वास है कि इस प्रकार से ही गई पाद मर हुए जायमी की धारमा की परलोक-यात्रा में सहायक सिद्ध होती है।

'गोदान' के प्रकाशित होने के बाद जिस बार ही प्रेमचंद की मृत्यु हो जाने में इस रचना की एक प्रतीकारमक महत्त्व प्राप्त हो गया। यह प्रेमचंद का अंतिम ग्रंथ था अंतिम कार्य था जो उन्होंने माहिल्य-मंसार से बिना सेने के पूर्व संपादित किया। बाल्य में माहिल्य के संसार में ही वे अधिक स्वाभाविकता अधिक विमनमारी और अधिक स्वच्छंदता के साथ विचरने कार्य में। गरीब-ऊरोष्ठ और भेन-दन की दुनिया के लिए वे अजनबी थे। मरने हुए व्यक्ति द्वारा ही गई वो उनकी जीवात्मा की परमाक-यात्रा में सहायक सिद्ध होनी है या नहीं इसे कोई नहीं बता सकता। कम-से-कम मैं नहीं बता सकता।

लेकिन यह निर्विवाद है कि 'गोदान' प्रेमचंद को हिंदी के सबसे बड़े उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। अपने जीवन कास में वे 'उपन्यास-सम्राट' बने जाते थे। शायद एक बार यह विवाद भी उठा था कि 'कवि-सम्राट' की समानता पर उन्हें 'उपन्यासकार-सम्राट' कहना चाहिए। यदि इस बपक को बोझा और घाये बड़ाना अनुचित न समझा जाए तो मैं कहना चाहूँगा कि यदि प्रेमचंद उपन्यास या उपन्यासकार-सम्राट थे तो 'गोदान' उनका मोर-मुकुट था। 'गोदान' प्रेमचंद की अंतिम रचना ही नहीं उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना भी है।

यह बात तो प्रेमचंद के साधारण पाठक पर भी बाहिर हुए बरपर न रहेगी कि 'गोदान' के कथानक अति-विस्तृत आतावरण अथवा मेकअप के दृष्टिकोण में कोई ऐसी चीज नहीं है जो विस्मय नहीं करे या सुके जो पहले कभी नहीं थी और जो यहाँ पहली बार बनी गई है। पुस्तक हाथ में लेने के समय से लेकर पुस्तक समाप्त कर कर देने के समय तक आपको बराबर वह अनुभव होता है कि आप प्रेमचंद की दुनिया में घूम रहे हैं। आपको धुक् से यह पता चला है कि उनकी कहानी कैसे घाने बड़ेगी और समाप्त होगी। उसके पात्र अति प्रकार का व्यवहार करेंगे और कैसे विकसित होंगे। मेकअप हमें किम और से था रहा है, किनके प्रति वह हमारी संवेदनाएँ जगाने जा रहा है, किनके प्रति हमारी क्रुणा जगाने। 'गोदान' को किसी भी धर्म में हम कोई नया इयम नहीं कह सकते। बसुत 'गोदान' में उसी तकनीक और माधुर्य की परिपक्वता और पुष्टि है जिसे प्रेमचंद ने अपने कलाकार और मानव के जीवन में शुरू से अपनाया और ऊपर उठाया था। संभवतः अपने साहित्यिक और साध ही अपने भौतिक जीवन को समाप्त करने के पूर्व उन्होंने अपने को परिपूर्णता में एक उपन्यास में रत देने का प्रयत्न किया था—अपने कलाकार को भी मानव को भी और सभी की परिस्थिति 'गोदान' में हुई।

इस उपन्यास के प्राचीन तथा आधुनिक पात्रों की बीड़ में गुंथकर—जिनमें मैं मिला हूँ परिचित हुआ हूँ जिन्हें मैंने पहचाना-ममका है—जब मैं किसी प्पाट अथवा कथानक को जोड़ने का प्रयत्न करता हूँ तो मैं अपने-आप को धमकाने ही पाता हूँ। एक तरह से हारी को हम इस उपन्यास का नायक कह सकते हैं। मध्य-वयस्क हारी एक ऐसे गाँव का रहस्य है जो एक बड़े नगर के

बहुत दूर नहीं है। उसके पास थोड़ी-सी जमीन है जिसपर वह अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से काम करता है और जो उसके भरण-पोषण का एकमात्र साधन है। होरी का जीवन उस सखे संघर्ष की कहानी है जो उसे अपने परिवार के साथी समाज के ठीकदारों मित्र कहे जानेवाले व्यक्तियों सुबसोर छाहूकारों पुलिस के हुक्मियों जपट चट पटमारियों और जमींदार के कुर्गों के विरुद्ध झेपना पड़ता है—और निश्चय ही छोटी-सी क विरुद्ध भी जो भारतीय किसान का सबसे बड़ा प्रतिघात है। स्वाभाविक है कि दृष्टि-निर्धर समाज में गाय समृद्धि का प्रतीक बन गई है और होरी की महत्वाकांक्षा है अपने घर एक अच्छी गाय रखने की। वह उसका घर धाँपी है परंतु मृग-मरीचिका बनकर और धीम ही विरोहित हो जाती है। अपनी मृत्यु-राध्या पर वह ब्राह्मण को भी दान देता है वह गाय नहीं है वह उसका प्रतीक मात्र है बोझ-सा देसा जो उगकी प्रतिम बचत है।

जिमकी पीठ के बीच में सीधी रीढ़ नहीं है वह संघर्ष नहीं कर सकता। और होरी की पीठ में वह है और निश्चय ही वह बहुत बोझी है। यह क्या बीर है? ईश्वर में विश्वास? चरित्र की पवित्रता? ईमानदारी? सच्चाई? हक़ता? भाषा? या और कोई ऐतिहासिक कुल जो साधारण उपदेशकों की स्तुति में स्थान पाता है अथवा चर्च-स्मृति की पावन पौधियों में बसाना पाता है? मुझे लम्बा किया जाय यदि मैं कहूँ कि इनमें से कोई भी नहीं। होरी के सारे काम सिर्फ एक बात से निर्दिष्ट होते हैं केवल एक धारणा पर आधारित है एकमात्र विचार से प्रेरित है जिसमें वह 'मरकाप' कहता है जो अकारण उनकी ध्यान पर रहता है 'असुग' जो गाँव के सभी लोगों की ध्यान पर रहता है। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति उनकी व्यापकता उनकी अपरिहार्यता इसकी उपयोगिता से—आमद प्रीति में भी—रखता है। हर व्यक्ति इसके प्राण नतमस्तक होता है और जब कभी कोई व्यक्ति अपनी किसी दुर्बलता अथवा किसी दुर्निवार परिस्थितिबद्ध ऐसा करने में अग्रसर रहता है तब तब इस बात की कैलाश रहती है कि उसने कुछ ऐसा किया है जो गलत है अनुचित है अयोग्य है। और मैंने अक्सर यह सोचने का प्रयास किया है कि इस राज्य के अज्ञान क्या है? इनमें गाँव के लोग समझते क्या हैं?

मेरे विचार से इसका मतलब है ईमान की ईशानियत धारणी की प्राद

मियत मनुष्य की मनुष्यता मानव की गरिमा । जब कभी होती कहता है कि यह मरजाद नहीं है, तब उसका मतलब होता है कि यह मनुष्य को सोमा नहीं देता । मनुष्य से जो प्रत्यासित है उसकी एक सीमा है एक स्तर है । उससे बाहर जाने पर नीचे गिर जाने पर मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता ।

मेमबद का जन्म और पालन-पोषण गाँव में हुआ था और उन्होंने मात्र प्रयोग दृष्टि वाली कमाकदार की रागात्मक संवेदना से भारतीय किसान के दैन्य कुछ संकट, कष्ट और अपमान मानि को देखा-समझा था । और वे उस हड़ संघर्ष के भी साक्षी थे जो वह उन सबके विद्वत् अपने जीवन भर करता रहता है । मेमबद ने अपनी आँखों से देखा था कि हमारे गाँव छोटे मोटे मरवा हो गए हैं और इस बात पर आश्चर्य किया था कि वे जब तक मर जायें तो दुःख में किसी भी नहीं हो गए । उन्हें धामास हुआ कि हमारे गाँवों में कुछ भी खोया हो सब कुछ खोया हो एक बीज उन्होंने नहीं छोड़ा था—मूखों में धास्वा मानव-मूखों में धास्वा—मानव-गरिमा में धास्वा—एक धास्वा में मरजाद । उनके मन में यह बात बैठ गई थी कि हो-न-हो इसी ने उन्हें परीत फास में गहारा दिया था और उन्हें विश्वास हुआ था कि यही उन्हें अधिक में उबारेगी भी । मेरी दृष्टि में होती इसी विश्वास और इसी धास्वा का प्रतीक बनकर हमारे सामने आया है ।

एक पक्ष का दूसरे पक्ष से मतुसित रहना उपन्यासकार की बड़ी पुरानी लक्ष्मी है उपन्यासकार की ही क्यों सभी कलाकारों की है । कुछ सोचकर मन्त्र है कि नागरिक पार्श्व का वर्ण—मेहना जन्मा तनया पिशा मानती है—देवता इसलिये आया गया है कि ग्रामीण पार्श्व के—होरी मोमा गोबर, मातादीन बनिषा और मुनिषा के बच क लिए पुण्ड्रभूमि का काम दे सके जिससे कि हम बीपरीय से वे अधिक उभरकर हमारे सामने आएँ । नागरिक पार्श्व के बग का माने में देवता इतना देवता उपन्यासकार के उस बड़े उद्देश्य में अनभिज्ञ रह जाना है, जो संभवतः उसके मन में था ।

गाँव के लोग भीतिक दृष्टि में गरीब हैं कुली हैं मेकिन मानव-मूखों में उनकी धास्वा है अपवा के मानव-मूखों में सभत है । बाहर के लोग भीतिक दृष्टि से मयम है कुद्र के पास थन की धनि है मेकिन या तो उन्होंने मानव मूखों में धास्वा ली थी है अपवा उनम अपेन है नैतिक मूखों से मूखा से

बहुत दूर नहीं है। उसने पाग बोझी-सी खीन है जिसपर वह अपने परिवार के सदस्यों की सहायता से काम करता है और जो उसके भरपूर-पोषण का एकमात्र साधन है। होरी का जीवन उस जैसे स्वयं की कहानी है जो उसे अपने परिवार के लोगों, समाज के ठेकेदारों, मित्र, कहे जानेवाले व्यक्तियों, भूदस्तोर, छाहूकारों, पुलिस के हुकूमों, बपट-बंट पटवारियों और जमींदार के कुनों के बिच्छे झेड़ना पड़ता है—और निरपेक्ष ही छोरी की बिच्छे भी जो भाण्डवी किराने का सबसे बड़ा अभिघात है। स्वाभाविक है कि कृषि निर्भर समाज में पाय नमृद्धि का प्रतीक बन गई है और होरी की महत्वाकांक्षा है अपने पर एक अच्छी माय रखने की। वह उसके घर धाती है परंतु मृग-मरीचिका बनकर और सीमा ही विरोधित हो जाती है। अपनी मृग्य-शय्या पर वह बाह्य को आ धाम देता है वह माय नहीं है वह उसका प्रतीक मात्र है बोझ-सा पैदा हो उसकी प्रतिय वक्ष है।

जिसकी पीठ के बीच में सीधी पीठ नहीं है वह स्वयं नहीं कर सकता। और होरी की पीठ में वह है और निरपेक्ष ही वह बहुत पोड़ी है। यह क्या चीज है? ईश्वर में विश्वास? चरित्र की पवित्रता? ईमानदारी? सम्मान? हठता? भाग्य? या और कोई नैतिक गुण जो साधारण उपदेशकों की स्कूची में स्थान पाता है जबका धर्म-नृति की पावन पोकियों में बघाना जाना है? मुझे श्रमा किया जाय यदि मैं कहूँ कि इनमें से कोई भी नहीं। होरी के सामने काम सिर्फ एक बात से निर्दिष्ट होने है केवल एक पारलु पर आधारित है जन्मान विचार से प्रेरित है, जिसे वह 'मरजाब' कहता है जो घरदार उनकी खजान पर रहता है वस्तुतः जो नाथ के सभी लोगों की जीभ पर रहता है। नाथ का प्रत्येक व्यक्ति इसकी व्यापकता हमकी अपरिहार्यता इसकी उपयोगिता से—वायव्य शोभा में भी—सदैव है। हर व्यक्ति इसने धार मत्तमलक होना है और जब कभी कोई व्यक्ति अपनी किसी दुर्बलता या कदाचित् किसी दुर्निवार परिस्थितिबद्ध केसा करने में असमर्थ रहता है तब उस इस बात की चिन्ता रहती है कि उसने कुछ ऐसा किया है जो गलत है धनुषिण है अयोग्य है। और मैंने अग्नार यह भावने का प्रदान किया है कि हम राज्य के मतमल क्या है? हमने नाथ के लोग समझते क्या है?

मेरे विचार से इसका मतलब है ईमान की दरादियत धारवी की धार

मियत मनुष्य की मनुष्यता मानव की गरिमा । जब कमी होती कहता है कि यह मरबाब नहीं है, तब उसका मतलब होता है कि यह मनुष्य को शोभा नहीं देता । मनुष्य से जो प्रत्याशित है उसकी एक सीमा है एक स्तर है । उससे बाहर जाने पर नीचे गिर जाने पर मनुष्य मनुष्य नहीं रह जाता ।

प्रेमचंद का कर्म और पापम-प्रेमण राई में हुआ था और उन्होंने भाव प्रकट करके सभी कमाकार की रागात्मक संवेदना में भारतीय किसान के सब कुछ सफट कष्ट और अपमान पानि को देखा-समझा था । और वे उस हड़ सवर्ष के भी छाती के जो यह उन सबके बिचड़ अपने जीवन भर करना रहता है । प्रेमचंद ने अपनी आँखों से देखा था कि हमारे गाँव छोटे माटे तरक हो गए हैं और इस बात पर आश्चर्य किया था कि वे सब तक गट्ट सफ्ट हा धून्य में बिलीन क्यों नहीं हो गए । उन्हें आभास हुआ कि हमारे गाँवों में कुछ भी बीया हो सब कुछ बीया हो एक बीज उन्होंने नहीं छोड़ा था—भूमि में धाँसा मानव-मूर्तियों में धाँसा—मानव-गरिमा में धाँसा—एक शब्द में मरबाब । उनके मन में यह बात बँट गई थी कि हो-न-हो इसी ने उन्हें घटीत काम में सहारा दिया था और उन्हें बिश्वास हा मया था कि यही सगह मविष्य में उबारेगी थी । मेरी दृष्टि में होती इसी बिश्वास और इसी भावा का प्रतीक बनकर हमारे सामने कहा है ।

एक पक्ष को दूसरे पक्ष से मनुषित रक्षना उपन्यासकार की बड़ी पुणनी तकनीक है उपन्यासकार की ही क्यों सभी कमाकारों की है । कुछ सोच कह मन्ते हैं कि नागरिक पात्रों का बर्ण—मेहता खन्ना गनगा मिर्जा भासती हा—केवल इसमिण साया मया है कि धामीण पात्रों के—होरी मोया मोवर, माधारीन बनिया और भुनिया के बर्ण के लिए पृष्ठभूमि का काम है मके, निम्न कि एक बँपरीस्य से वे धिक्क उबरकर हमारे सामने धाएँ । नागरिक पात्रों के बर्ण को माने में केवल इनका देगना उपन्यासकार के उस बड़े उत्सव से धनमित्र रह जाना है जो नमकत उनके मन में था ।

गाँव के लोग भीतिक दृष्टि में घरीक हैं दुखी हैं लेकिन मानव-मूर्तियों में उनकी धाँसा है धचका वे मानव-मूर्तियों से सचत हैं । शहर के लोग भीतिक दृष्टि में संफज हैं कुछ के पाम बन की धति है लेकिन या तो उन्होंने मानव मूर्तियों में धाँसा तो ही है धचका उनमें धचन है भीतिक मूर्तियों में मूर्तियों में

ही। पहले वर्ग के लोग भौतिक सुविधाओं को तरस रहे हैं दूसरे वर्ग के लोग नैतिक मूल्यों के अभाव में बेचैन हैं। मामूली को एक एक मानसिक आति नहीं मिलती जब तक कि वह नैतिक मूल्यों को नहीं अपना लेता। जन साधारण के प्रति संबन्धना चीनों की सेवा असहायों की सहायता इन्हीं से उद्भूत होती है।

प्रमोद के 'माशान' में गाँव के एक बच्चे का नगर के एक वर्ग से जो अंतर दिखाया गया है, वह उस महान अंतर का प्रतीक मात्र है जो हम आज के ससार में बहुत बड़े पैमाने पर देख रहे हैं। एक तरफ पश्चिम है—यन-आत्म से लदा-पेदा—तबिल उसमें मानव-मूल्यों के प्रति आस्था का अभाव है। दूसरी ओर पूर्व है एसियाटिक के युग का 'समृद्ध पूर्व' (रिच ईस्ट) नहीं गरीबी का प्रतीक—जो अपने भौतिक अभावों में भी विश्वास और धारा के साथ कठिपय मानव एवं नैतिक अभावों की धारा के आधार-भूत मूल्यों से बिकटा हुआ है। कुछ समय हुए, मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था जिसकी शीर्षक में पश्चिम में काफी बर्बादी हुई है—'अमेरिका मोडर्न एन आइडियालोजी' (अमेरिका की विचारों की आवश्यकता है)। एक ओर से प्रतिस्पर्धा की धारा 'इंडिया मोडर्न ए बेंक-बसेड' (भारत की पूर्वी की आवश्यकता है)। क्या एक-दूसरे की हीमता है? क्या एक-दूसरे में रोम-रोम संभव है? और अपनी अंतर्दृष्टि से प्रियदर्श ने 'योत्रान' में जो समस्या नहीं की है वह आधुनिक संसार की समस्या है और य प्रत्येक धारा हर एक प्रश्न का रहे हैं। क्या दुनिया इन प्रश्नों का उत्तर देगी इस समस्या को हल करेगी?

[१९५३]

पत और 'कसा और मुड़ा नाब''

मेरी सिला-बीटा कुछ इस प्रकार हुई कि मैं कविता का प्रेमी बन गया। सस्कार और परिस्थितियों के कारण जीवन के साथ घनमाने जो धीरे-धीरे बन जाते हैं या मया लिए जाते हैं कभी-कभी उनपर भावे जमकर पड़ना भी होता है। अपने काव्य-प्रेम के कारण मुझे पछाने का अवसर नहीं मिला। उल्ट, मात्र जिन दो बातों के लिए मैं परमात्मा को सबसे अधिक धन्यवाद देता हूँ उनमें काव्य प्रेम का नंबर दूसरा है। पहला न बताऊँगा बहुत निजी है।

पुनः है तूने मुझे कविता का प्रेम दिया। बुनिया म बहुत-से चीजें समय के साथ घट भी जाते हैं। मेरा काव्य-प्रेम नहीं बढ़ा। कविता की कोई पुस्तक देखकर, मैं उसे पढ़ने को सामाहित हो उठता हूँ—खींचकर माँफकर, धुपकर। पिछ्मो वो नौबतें भी कम नहीं आईं। और परमात्मा से मेरी एक शिकायत भी है कि उसने मुझे कभी इतना पंसा नहीं दिया कि कविता की बितनी पुस्तकें बाहूँ खरीद सऊँ और जिनका बाहूँ उठाना बुरा भी सऊँ। मनुपायी तो मैं कागजी भर हूँ। विमदाबा तो मैं बुरा का ही हूँ। कभी-कभी तो ऐसी भाषाओं के काव्य संबंधों का भी खरीदने का मेरा जी करता है जिन्हें मैं नहीं समझ सकता। दूकान या पुस्तकालय में उनपर हाथ केर चुपचाप रख देता हूँ—यह रस मेरे लिए नहीं है।

मेरे विद्यार्थी-जीवन में सिलकों और परीतकों का एक बड़ा बिसा-पिटा विषय था जिसपर वे निबंध लिखाते थे परन्तु मैं सवाल रखते थे और मौखिक परीक्षाओं में भी प्रश्न करते थे—'तू इस ओर ओरिएण्ट पोएट? तुम्हारा प्रिय धर्म या पंथ का कवि कौन है? उस समय ऐसे प्रश्न का उत्तर देने की बोध्यता मुझमें क्या रही होगी। मात्र धगर के लोग मुझसे यह प्रश्न पूछते तो मैं धावद अधिक परिपक्व निगुम और धात्मविश्वास के साथ उनको उत्तर दे सकता। मैंने विशेष अध्ययन अंग्रेजी और हिंदी काव्य का किया। अंग्रेजी के गुराने

हैं। पहले वर्ग के लोग नीतिक सुविधाओं को तरस रहे हैं दूसरे वर्ग के लोग नैतिक मूल्यों का ध्यान में ले रहे हैं। मासपी को सब तक मानसिक छानि नहीं मिलती जब तक कि वह नैतिक मूल्यों को नहीं धपसा लेती। जन साधारण के प्रति संवेदना दोनों की सेवा प्रसहार्ता की सहायता इसी से उपबुद्ध होती है।

प्रेमचंद के 'मोदान' में लोक के एक वर्ग का नगर के एक वर्ग से जो संतर बिप्लवावा गया है, वह सब महान संतर का प्रतीक मात्र है जो इस प्रायः संसार में बहुत बड़े पैमाने पर देख रहे हैं। एक तरफ पश्चिम है—जन-मान्य से महा-वैदा—नेकिन उसमें मानव-मूल्यों के प्रति धारणा का धमाका है। दूसरी ओर पूर्व है एशिया-मध्य के युग का 'समुद्र पूर्व' (रिच ईन्ट) नहीं सरीबी का प्रतीक—जो अपने नीतिक धमाकों में भी बिद्वान और धारणा के साथ कठिण धामय एवं नैतिक धमाका जीवन के साधारण मूल मूल्यों से बिपका हुआ है। कुछ समय हुए, मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था जिसकी हाल में परिचय में काफी बर्णना हुई है—'अमेरिका सीड्स ऐन आइडियालोजी' (अमेरिका की सिद्धांत की आवश्यकता है)। एक ओर से प्रिन्सिपल-तो घाई 'इंडिया सीड्स ए बेंक-वैलेंस' (भारत की पूर्वी की आवश्यकता है)। क्या एक-दूसरे की जीवन है? क्या एक-दूसरे में गैल-वैलेंस जीवन है? और अपनी संतर्ह-पि से प्रेमचंद के 'मोदान' में जो समस्या नहीं की है वह आधुनिक संसार की समस्या है जो ये प्रश्न प्रायः इस तरह पूछे जा रहे हैं। क्या दुनिया इन प्रश्नों का उत्तर देती इस समस्या को हम नरेगी?

{१६२३}

पत और 'कसा और सूझा चाँद'

मेरी चिन्ता-बीजा कुछ इस प्रकार हुई कि मैं कविता का प्रेमी बन प्य संस्कार और परिस्थितियों के कारण जीवन के साथ घनवाने जो धीरे-धीरे सपना जाते हैं या सपना लिए जाते हैं कभी-कभी उनपर भावे बलकर पछतामी हाता है। अपने काव्य प्रेम के कारण मुझे पछताने का अवसर नहीं मिला। उन्हे, पात्र जिन दो बातों के लिए मैं परमात्मा को सबसे अधिक बन्धना देता हूँ उनमें काव्य प्रेम का नंबर दूसरा है। पहला न यतार्थता बहुत निजी है। मुझ है तुने मुझे कविता का प्रेम दिया। दुनिया में बहुत-से धीरे समय के साथ बट भी जाते हैं। मेरा काव्य-प्रेम नहीं बटा। कविता की कोई पुस्तक देखकर मैं उसे पढ़ने को सामावित हो उठता हूँ—खरीदकर माँवकर, कुछ कर। पिछली दो मौकों भी कम नहीं पाह। और परमात्मा से मेरी एक प्रियायत भी है कि उसने मुझे कभी इतना पँचा नहीं दिया कि कविता की जितनी पुस्तकें चाहूँ लरीव नहूँ और जिनका चाहूँ उतना पूरा भी सखूँ। मनुष्यायी तो मैं काव्यी पर हूँ। हिमशरा तो मैं दूध का ही हूँ। कभी-कभी तो ऐसी भावामों के काव्य पंहां को भी खरीदने का मेरा जी करता है जिन्हें मैं नहीं समझ सकता। जान या पुस्तकालय न उनपर हाथ डेर चुपचाप रन देता हूँ—यह रस मेरे तान नहीं है।

मेरे विचारों-जीवन में चिन्ताओं और परीतकों का एक बड़ा चिन्ता-पिटा नियम का जिसपर के निर्बंध मिखाते थे परलों में सवागत खाते थे और मौखिक परीक्षाओं में भी प्रस्तुत करते थे—हू इस मोर छेनरिट पोएट ? तुम्हारा प्रिय प्रबवा पत्र का कवि कौन है ? उस समय ऐसे प्रश्न का उत्तर देने की बोध्यता मुझमें क्या रही होगी। पात्र धरर के लोग मुझसे यह प्रश्न पूछते तो मैं धामद धमिक परिपक्व निर्णय और आत्मनिश्चास के साथ उनको उत्तर दे सकता। देने बिनाय प्रप्यवन धरेंडी और हिंसी काव्य का किया। अचिन्ती के पुराने

कवियों में देखतपियर और धातुनिक कवियों में ईदुस को और हिंदी के पुराने कवियों में तुमसीदास और धातुनिक कवियों में सुमित्रार्णव पंथ को मैं रचना 'जेवरि' कवि कह सकता हूँ। 'पसव के' और 'प्रिय से जेवरि' मुझे कुछ अधिक मूल्य प्रय देता है इसी कारण मैंने इस पद्य का प्रयोग किया है। 'जेवरि' बनाने में किसी कवि के बड़े-छोटे हाने का प्रयन नहीं उठता हाताकि देखतपियर और तुमसीदास के बह्मण के भाये प्रयन-विज्ञ कीन भवाण्या पर ईदुस और पंथ के बह्मण में उनसे बड़े धातुनिक कवियों की रचना की जा सकती है।

पंथ जी की प्रथम प्रकाशित कृति 'उच्छ्वास' मने १९२२ में लखी थी। तब से आज तक उनकी अभी नई कृतियाँ मने प्रकाशित होते ही पड़ी हैं। उनकी प्रत्येक रचना में मुझे एक विशेष प्रकार की नवीनता मिली है—भाव-विचारों का कोई नया स्तर, मन-जीवन-काल के प्रति कोई अनिनय प्रतिबिम्ब। वह बात और है कि किन्हीं रचनाओं में किसी मन-स्थिति की एकता प्रयवा द्धराव के कारण कुछ धाम्य भी हो—जैसे 'युगवाणी' और 'धाम्या' में या 'रथमं किरण' और 'कवर्लपुनि' में। जैसे पंथ जी में द्धराव की स्थिति अधिक मनम तक नहीं रहती। किसी एक धर्म में नहीं वे सतत प्रयतिशील कवि हैं। उनकी हर कृति नई दिशा या नए मोड़ का संकेत देने ही में है, पर नई मंजिर पर पहुँचने का बहुत निबिबाव रूप से देती है। हमें यह न भूलना चाहिए कि सृजन को दिशा समस्त ही नहीं होती ऊर्ध्व भी होती है। अगर वे कही घाते नहीं बड़े ता ऊपर उठे हैं और प्रायः उन्हीं ने दोनों काम पाव दिए हैं साथ ही बड़े हैं ऊपर भी बड़े हैं। 'मैं कहीं घड़ा या बस उस वन पर घाव नहीं'—उम 'स्तर पर भी घाव नहीं।

पंथ जी की नवीनतम कृति 'जला और बूझा पाव' १९५८ की रचना है जो १९५९ के पंथ में प्रकाशित हुई और १९६० के प्रारम्भ में शोलों के त्रयों में पहुँची। जिनाई गाइज में पृष्ठी २०८ पृष्ठों की इस पुस्तक में ९० कविभार्य हैं। गुप्तर इधर उमटते-ममटते ही जिस बात का म्पट घामाव होता है वह है इसकी नवीनता—प्रयतिशील नवीनता नहीं प्रयतिशील नवीनता धातुनिक नवीनता। अपने आसौग बन के बाध्य जीवन में पक्षी बार उम्हने एक त्रिमी मंजी में कविताएँ मिली जिनमें साथ-साथ उहोने प्रयन एक पंक्ति भी नहीं मिली थी।

दौसी का परिवर्तन अपने आप में एक बहुत बड़ी बात है। अपने प्रति ईमानदार और आत्मदानी कवि अपने कलाकार में दौसी का परिवर्तन उसकी जीवनानुभूति में परिवर्तन उसके भाव बनना विचार-बनना में किसी प्रकार की जबरन-पुनरावस्था उसकी किसी घातक शोष बनना प्राप्ति का प्रतिबन्ध मंकेत है। दौसी उसकी बाहरी नींव नहीं जिसकी प्राप्ति उसे समझ दिया जाता है—उस दौसी में न शिक्षा इतनी में शिक्षा। कथ्य और कथन न विषय और दौसी न भाव और तबला से भी अधिक निकट और मूल्य सब है। पत ऐसे कवि की यह सनक मात्र नहीं हो सकती कि अपने उर-अद्विज न नाचने वाली वाली से सहृदय कहे कि अपने अपने की पायलें उतार दो। तो, इस बाध नहीं गता और परिवर्तन के पीछे किसी घातक नवीनता को देखने-जमझने की आवश्यकता होगी।

दौसी दौसी का नया प्रयोग भी सर्वक की सजीवता का निरूपण है। सजीव वाक् सजीव भाषा सजीव साहित्य नए-नए प्रयोग किया करता है। यह स्वतन्त्र सभी होता है जब कोई घातक जड़त्व नहीं अधिपत्य में होता है। प्रयोग के लिए प्रयोग मात्र बर्दा पीढ़ियाँ करती है—आत्म अपने सृजन प्रवृत्ति की उदा मता में ही। सृजन भाषा से अधिक सम्बन्ध है। किसी विप्लवी आकाश में किसी प्रवृत्ति का अनुकरण करने के लिए, अपने सामर्याह स्रोतों का ध्यान अपनी और साक्षात् करने के लिए—जैसे अब भी उगें इसकी आवश्यकता है—पंत जी ने अपना नयन ठाढ़ दिया हो इसे मैं नहीं स्वीकार कर सकता। बासीम बर्दा तक बाक-माधना करने के पश्चात् जब अपने मानसिक अवस्था निरूपण के लिए, अपने की उद्घाटन-गृहण करना पंत जी के लिए अनभव है। मैं यह मानता हूँ कि पंत जी की यह दौसी उनके अंतर में किसी नवीन प्रवृत्ति का प्रतिफल है।

मेरा अनुमान है कि अगर अपने आलोच्य कृति नहीं देखी तो श्रद्धा तक इन दौसी की रचना के लिए अपनी विज्ञाता प्राप्ति होगी। दो दक्षिणें नहीं उद्घाटन करना अनुचित न होगा—एक मम्मी एक छोटी।

अनुपम

मो ममापिरो

बहु मोने का मधु

कहाँ न मारी ?

वे किंग पार के बग य

तब खिले फूल ?

जिनकी वस्तुधियाँ

धंजलियों की तरह

धनत धान के लिए

गुत्ती रहती हैं ।

फिरने सपना

स्वप्न प्रष्टा

बितबन तुमी से

उनके रूप नग घकित कर साए ।

पूना के हार

गुला के सज्जन लोकाफर

उन्हेनि

मुम्हलाई हाँ नलाई ।

रस के प्यासे नयन

मधु नहीं भोगू सक ।

धो माने की माली

तुम मर्य ही मे पैठ बर

स्वर्ग न प्रबन कर

हियामय-न धनत

बुध मीन का

गुनित कर गई ।

उन मालिक गुणराग के

प्रमत्त बटारों में

बैसा पावक रहा

हीरक रत्नियों मरा ?—

दिने गुजर

तुम बर भर लाई ।

कौन धन्य गंध तुम्हें
कल का भविस दे गन् ?

घो बीत सखी
द बीजते पंख मुझे भी हो
भी पाते रहते हैं —

घोर,
बह मधु की गहरी परख —
मैं भी
मधुपायी जड़ान मरौंदा ।

मान्यता की रचना
तुम्हारे घत्ते-सी हो !
बिचमें स्वर्ग कूलों का मधु
बुबकों के स्वप्न

मानव हृदय की
कदना ममता —
मिट्टी की सीधी गंध भरा
प्रेम का घमृत्
मासों का रस हो !

वाह्य घेय

तुम चाहत हो
मैं धन्यमिमी ही रहूँ !
बिचमे पर
कृम्हता न काळ,
कर न काळ !

हाथ दे बुराया ।
मुझमें
बिजना
कृम्हाना हो
दिब पाए ।

स्वभाव से आकर्षण और वृत्ति से अभिधर्मितप्रिय होने के कारण कवि या कलाकार इस प्रवर्धन का प्रयत्न बड़ा शिकार होता है। काव्य के विचार साहित्य के क्षेत्र में भी पुष्टे। नमालोचना की मनोविश्लेषणमय पद्धति बन गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि काव्य में कविता प्रयत्न की एक नई विधा है। काव्य के विचार मूल्य के क्षेत्र में भी पुष्टे। जहाँ पहले प्रवर्धन प्रवर्धन मूल्य को अभिव्यक्ति को प्रभावित करता था वहाँ अब वह आम-जन्य प्रयत्न सत्त्विक की धर्म युद्ध समाप्त में पंथ और वहाँ में मरने और तप्य के नाम पर बहुत-सा कृष्ण-कर्म-कीचड़ निकालकर बाहर फेंकने लगा। पाश्चात्य समाज के और पाश्चात्य समाज के प्रभाव में आए हुए समाज का कार्य में इन प्रवर्धन से निकाला हुआ बहुत-सा मर-मराला पात्र बनकर रहा है। ऐसा करनेवालों के पास विज्ञान का बल है। मरने में पंथ कैसे मोड़ सकते हैं मरने को धर्म फाड़कर देखा होता। ऐसे ही समय में पूर्व में एक और धर्म का उदय हुआ उसका नाम धर्मविह है। काव्यमीमे की धर्म तो धर्मविह ऊपर को उठे। काव्य में प्रवर्धन को लोच की तो धर्मविह ने धर्मविह का साधनकार किया। धर्म के पराक्रम में जहाँ बहुत-से कवि प्रवर्धन की ओर भुके वहीं कई कवि धर्मविह की ओर भी उठे। जिनमें पंथ की एक धर्म कवि है जिन्होंने इस धर्मविह को प्रवर्धन के लिए बहुत बलों में प्रयत्न किया है। उम्मीने प्रवर्धन में मुक्त हो गई मोक्ष समाज विरोध की विधा है। उनकी 'विष्णु' में महार-महार के पदवान् नवगजकों को जो एक प्रतिमा विपद-विपद युग की विमर्श है वह काव्य की है।

यह मर के बल नहीं वृत्ति है किन मर वधु की ?

मानव के पूर्वज का लगता भाव मृत को ।

पुष्प विषाणु विज्ञान मर वधु रोषों न तन

हृण पदवी के न हण, भीनी मुल धाहनि

मर वधु का गा मानव विज्ञान तन इनका

कीन पत्र यह पत्र म कीचड़ म हुआ ।

किमी मनोविश्लेषण की प्रतिभा मानी यह —

मीही-मीही उतर बहुत बागता मने में

अवचेतन के अंधकार में घटका गया जो !
उर्म्य धेरियाँ छोड़ चेतना की जो निम्नम
निष्चेतन में विचार पशु मानस के स्तर पर,
जसम् अधियों में अक्षय्य इंद्रिय जस पीड़ित
कोमल पाया आत्मभुक्ति का पन अंतर्मुख —
उमरे मोटे धोठों में सामसा दबाए
कूटघातों की रेखाओं से बर्जर धावन !

अविचेतन की ओर उठने का यह अध्यवसाय संभवतः उन्होंने 'स्वर्णकिरण'
की रचनाओं के साथ आरंभ किया था। 'कला धीर बूझा जाय' में उसी
इसी मनोमग्न परिछाति हुई है। जो बात पहले मित्रात या विचार के रूप में
आई थी वह कवि की कल्पना का आधाय पाकर भी बोझी सुज्जता के साथ
'स्वर्णकिरण' 'स्वर्णभूमि' में व्यक्त हुई। 'उत्तरा' में वह अधिक मात्र-विकृत
होकर आई। आश्चर्य नहीं पंच की ने स्वयं 'उत्तरा' को नीच-बोध तथा मात्र
ऐस्वर्य की दृष्टि से अपनी रचनाओं में सर्वोपरि माना। 'अविद्या' और 'बाग़ी'
में होते हुए 'कला धीर बूझा जाय' तक पहुँचते-पहुँचते विचार धीरे धीरे मात्र
न गए, मनुमानुष्य में बदल गए, जिसे आप चाह तो महज स्फुरण सहज प्रभा
अबचा दिव्य दृष्टि कुछ भी कह सकते हैं

"मो रचने
गुम्हार लिए कहाँ छ
अनि छंद साढ़े ?
कहाँ न सख्त भाव साढ़े ?
सब विचार, सब मूल्य

सब आदर्श भय हो गए !
अनुभूतियों की एक सीमा पर शब्द साथ नहीं देते यह साधारण अनुभव
कला धीर बूझा जाय' में भी अर्थों की असमर्थता बार-बार व्यक्त की गई
विरोधानामी अभिव्यक्तियाँ आपाधापी काम से ही हिंसी में या गई थी।
जना में उनका प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। सख्त जैसे एक-दूसरे में
अब बचना शुरू हो जाते हैं। कवि मीन भी होने की तैयार है। पर जैसे
बीत मौन से भी अनुभूति अभिव्यक्त ही रहेगी। फिर

न जाय । सायक के ऊपर कलाकार बिजयी होता है । वह निश्चय करता है कि वह प्रतीकों में बाँसेगा

“मैं शब्दों की

इकाइयों को रौंदकर

मंकेतों में

प्रतीकों में घोसूँगा ।

महा तो यह है कि जादे कवि बोध के सर्वोच्च बिंदु पर अतिचेतन की बोटी में बोले जाहे बोध के तलाउतल पर—अवचेतन की निचली-रे-निचली सतह से बाँसठ होना है प्रतीकों में ही । जिसे अवचेतन की कविता कहा जाता है वह उतनी ही प्रतीक प्रचुर है जितनी अतिचेतन की कविता । घसाघा घाबर दाना स्पर्श की अभिव्यक्ति केन के लिए चाहिए । घायल लोगों से घबड़ी कविता भी निम्नो का सज़नी है पर जब कविता के हाथ जीवन् को समझने का प्रयत्न किया जाएगा जीवन का उदात्त बनाने की शेरणा भी बाणगी तब अवचेतन की घसा स्वीकार करते हुए भी अतिचेतना के धिक्कर पर ही खड़ा होगा । कविता का अंतिम म्येय जीवन को उठाना ही हो सकता है । ‘अस्मत्’ में पत भी स्वयं बढ़ चोखला करने हुए आए थे

“अस्मेसी सुदरता कस्यापि ।

मरुत ऐस्वयों की संमान ।”

‘जता धीर बूझा चाँद’ में वे स्पष्ट स्वर में कहते हैं

“शिव की कला ही

सत्य धीर मुहर है ।”

अवचेतन केका मत्त-मध्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण की दुहाई देकर अपना रसायन बचाव नहीं कर सकेगा । अवचेतन के भूत प्रेत जूझों काँकियों की घिर का अनुयायी होना पड़ेगा । हमारी पीछलगिन्न कला का यही मय मय है ।

मंगेय में ‘जता धीर बूझा चाँद’ ऊर्ध्व दृष्टियों का काव्य है । उन दृष्टियों पर पत जो ‘स्वर्गादिसर’ से लेकर सायक एक दूसरे रूप में ‘ज्योत्स्ना’ से लेकर आकाशक विलसते आए हैं ‘अपोसमा’ में समग्रतः उनके जीवन-दर्शन में एक बुनियादी बराबर संसार दिया था । पत जी ने अपने काव्य-जीवन में भातों में भी बहुत कहा है—विचारों में भी बहुत कहा है—विचारों से जो उन्हीं

पत धीर 'कसा धीर हुआ चाँद'

कहा है चायद बहुत-से सोय उसे छन्दकोटि की कविता न माने—'कसा धीर हुआ चाँद' में उन्होंने सहज स्फुरण (इग्नरसन) से कहा है विष्यदृष्टि से कहा है—'दृष्टा के आत्म-विपनात से कहा है जैसे हमारे वैदिक ऋषि कहते हैं—

'वेदाहमेत पुरुषं महाँव'—
(मैं इस महद् पुरुष को जानता हूँ)

X

धने

X

X

हिमासय के
शुभ्र श्वेत मौन को
पूर्वका

मानस सज से
छोटा का कह ।"

X

X

X

'मैं मूय में हुआ
बह स्वप्न सरोवर निकला
(मैं) रक्त कमल सा सिला ।
मेरे ध्रुव ध्रुव
स्वर्ण शुभ्र हो उठे ।"

पत धी केवल कवि नहीं रहे हैं वे बहुत बड़े विचारक भी हैं यह धीर पाठ है कि विचारों को पचवड़ करना कविता न माना जाए। पत रचना पर पत धी का इतना खूबस्त अधिकार है कि जब मैं ऐसा सोचने लगा हूँ कि चायद अपने विचारों को संयमित नियमित संतुलित संक्षिप्त सबस धीर पूर्णत प्रभावकारी (बमिटी इज स्ट्रेंग) रखने के ध्येय ही से तो नहीं उन्होंने उन्हें पचवड़ किया ! अपने कुछ विचारों को उन्होंने पत में भी व्यक्त किया है धीर पत में भी । किसी को किसी दिन इसका अध्ययन करना पड़ेगा कि कुछ माम्मन त कवि ने बोड़े में अधिक सारगमिज बात कह दी है । कविर्यनीपी तो पत धी रहने भी थे । 'कसा धीर हुआ चाँद' में उन्हें दृष्टा कहलाने का भी अधिकारी ना दिया है । अपनी मंत्री कविता 'स्वर्णोदय' के नायक में चायद उन्होंने अपना हमे का धीर सबका निज अधिकार कर दिया है

तरंग रवी ने येसे बहू फूलों के शायक
 अंत हृष्टि बहू रहा बिभारक अनमल नायक
 अन्वेषक शोभक निज भुग का भाव्य विभावक
 धर्म नीति धर्मन धर्मन में अवर विभावक ।”

×

×

×

“सहज चेतना स धन उसका हृदय प्रकाशित
 आसप-सी बहू जिसे न भू रज करती रचित
 दीप्त यौवन पिपिरी, बसत उसी में चित्रित
 पुत्र किरण बहू जीवन ईश्वरनुप में सजित”

मैं यह लेख इस विद्वान के साथ समाप्त करना चाहता हूँ कि रत्ना और
 बुढ़ा चाँद के प्रति आपकी जिज्ञासा बड़े-सी और आप उसे पढ़ना चाहेंगे।
 कुसुममीनार की आँटी पर पहुँचने के लिए बहुत-सी छीड़पों चढ़नी पड़नी हैं।
 पत की की यह अभिनव कृति उनकी आँटी की रचना है। अगर आप चाहें
 हैं कि उसका रस आप में सके तो आपको छीड़ी-छोड़ी ऊपर जाना चाहिए—
 उनकी प्रथम रचना ‘बीणा’ से आरम्भ करें। अपना एक रहस्य आपको बताऊँ,
 पत की का जब कोई नई रचना प्रकाशित होती है तो मैं एक बार शुरू से
 उनकी सारी रचनाओं का पारामल कर उसे पढ़ना आरम्भ करता हूँ। और
 अपनी पिछली रचनाओं के संदर्भ में ही मुझे लगता है उनकी नई रचना कुछ
 धर्म देती है।

[१९९१]

हमारा राष्ट्रीय गीत'

राष्ट्रीय गीत के संबंध में जो चर्चा बहुत दिनों से चल रही है उससे भारतीय जनता अभी भी परिचित है। स्वतंत्र देश के लिए कुछ बाहरी प्रतीकों की आवश्यकता होती है जिससे उस देश का अस्तित्व दूसरों से भिन्न व्यक्त हो सके। इनमें राष्ट्रीय झंडा, राष्ट्रीय मुहर और राष्ट्रीय गीत प्रमुख हैं। राष्ट्रीय झंडे के संबंध में निर्णय हो चुका है और वह सबको मान्य भी है। राष्ट्रीय मुहर के लिए अनेक स्तंभ का विचार पसंद किया गया है और उसका प्रयोग भी हो रहा है। परंतु राष्ट्रीय गीत के संबंध में हम अभी तक किसी प्रतिम निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं। मैंने अक्सर सुना है कि राष्ट्र-गीत के संबंध में देश के साहित्यकारों और कवियों को अपनी सम्मति देनी चाहिए यह प्रश्न केवल राजनीतिज्ञों पर नहीं छोड़ देना चाहिए। कुछ लोग धार्मिक आशेष में आकर, प्रायः वे लोग जो अंग्रेजी की तुलना में भारतीय भाषाओं को नगण्य समझते हैं, यह भी कह उठते हैं कि राष्ट्र-भाषा राष्ट्र-भाषा बिस्मिल तो बहुत हो तुमसे इतना भी तो नहीं हो सका कि एक अच्छे राष्ट्र-गीत की रचना कर सके। पहली बात का समाधान तो यों किया जा सकता है कि हमारे देश के साहित्यकार विशेषियों के आसन के समक्ष सही इतने उपेक्षित रहे हैं, कि उन्हें इन बात का विचार ही नहीं रह गया है कि वे जो कुछ अपनी बुद्धि बचवा मुझसे के अनुसार कहेंगे उसकी कोई छद्म की जायगी। इस कारण वे प्रायः ऐसे मामलों में सटस्य ही रहते हैं। दूसरी बात के लिए मेरा अपना विचार यह है कि राष्ट्र-गीत के लिए किसी रचना का बहुत उच्च कोटि का होना आवश्यक नहीं है। दुर्यायवशात् अंग्रेजी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के राष्ट्र-गीत नहीं जानता। परंतु मैं पूछना चाहूँगा कि अंग्रेजों के राष्ट्र-गीत में कौन-सा कवित्व है जिसके लिए अंग्रेज जाति ॥ मनीषियों और कवियों

मे अपना मस्तिष्क खपाया है। लेकिन यह बह सीत है कि जहाँ कहीं भी यह गया जाता है। हर संकेत ध्यानधन पर खड़ा होकर ध्यानस्थ हो जाता है। राष्ट्र-नीति ऐसा कि मैंने ऊपर कहा है एक प्रतीक है—एक धृति है—मानो तो बेवता नहीं पत्थर। सारी बात मानने की है।

यह मानने की बात जिसकी सरस माधुर्य होती है उसकी सरस नहीं है। सारे देश का देश बिना किसी धोर-बबान के कोई भीज मान से यह कोई साधारण बात नहीं है। उस भीज में कुछ तो ऐसा होना ही होगा जो सबके धतर को छू सके। एक पीढ़ी के मान सेने के बाद दूसरी पीढ़ी उसे कुस-देवता के समान पूजेगी और उसी के साथ अपनी भावनाएँ संबद्ध करती जावपी पर प्रत्यक्ष तो है हमारी वर्तमान पीढ़ी का। हम अवश्य ही एक नवीन भारत की नींव डाल रहे हैं, पर हम सब कुछ गया ही नहीं कर सकते। हम कुछ संस्कार भी लाए हैं। शायद हम उन्हें न भूलें तो अपने अधिपत्य के निर्माण में अधिक सतर्क और संवृत्ति रख सकेंगे। राष्ट्र-नीति के संबंध में भी हम कुछ सत्कार लाए हैं। राष्ट्रीय भंडे के संबंध में भी हमारे संस्कार थे। हमने स्वामीन भारत का भंडा विस्मृत नए रूप में नहीं रखा किया। उसके पुनर्ने रूप में ही मोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया है। अगर आवश्यकता हो तो एकदम नई नीति लाने का मैं विरोधी नहीं हूँ परंतु राष्ट्र-नीति के संबंध में मेरी धारणा है कि हम एकदम गया कुछ नहीं ला सकते। कम से कम धारण इन पर मोड़ा-सा विचार तो कर ही लें कि राष्ट्र-नीति के नाम पर हमारी भावनाएँ किन विषयों पर केन्द्रित होती रही हैं।

मुझे धमा किया जाए, यदि मैं कुछ व्यक्तिगत बर्षा भी कहूँ। मुझे याद आते हैं अपने स्मृतिमय स्मृत के दिन मई १९१७-१८ का उषाभा जब हमारे स्मृतों में जार्ज पंचम और क्वीन मैरी की तस्वीर लगी रहा करती थी। उस समय विदाप धमरों पर एक चीज सामा आता था। हम सब लोग गड़े ही जाते थे जो-एक धमक फिर आते सड़क जमे जाते थे। उन घाते की पहली पंक्ति मुझे अब तक याद है।

“ममबन्धु हमारे जार्ज वंशुम की विरायु बीजित।”

हमारे धम्यायक गण बहुत थका और धावर में जमे हयें जाना धीरधुनगा नितलाने थे। यह हमारी दाम धृति के धनुष्य या धीर धानेवाली धीर्धाम

मने ही इस पर चरचर करे परंतु हम जिन्होंने अपनी आधी उमर दासता में काटी है, अभी भी तब इसी मनस्थिति का प्रभाव कर सकते हैं जिसमें ऐसी बातें समझ थी।

मई १९१६ में मैं कायस्थ पाठशाला में गया। यहाँ स्कूल का काम शुरू होने के पहले बड़े हॉल में सब जमा होते थे और 'बंदे मातरम्' का गीत गाया जाता था। उत्सव आदि पर भी हमारी कार्यवाई 'बंदे मातरम्' के गीत से शुरू होती थी और हम सब लोग इस गीत का धारण होते ही चटपट बड़े हो जाते थे। वही मैंने यह सीखा कि यह हमारा राष्ट्र-गीत है। इस संबंध में मुझे एक घटना याद है। स्कूल में तो हम गीत को याद ठीक था पर हमारे बड़े-बूढ़े इसे बाहर कहीं जाने में शय का अनुभव करते थे। एक दिन मैं अपने घर पर 'बंदे मातरम्' गा रहा था कि मेरे चाचा ने मुझसे कहा "बंदे मातरम् इस तरह या रहा है, पक्काबाएया?" मैं कुछ समझ नहीं सका केवल यही ध्यान आया कि यह पूजा गीत कहाँ-तहाँ जाने की चीज नहीं इसे तथा कभीरता से गाया चाहिए। बाद को जैसे-जैसे मेरा ज्ञान बढ़ा मैंने बंदे मातरम् प्रादोक्षण के विषय में काफ़ी जाना। सभी से मेरी बारछा थी कि 'बंदे मातरम्' ही हमारा राष्ट्र-गान है। स्वतंत्रता प्राप्तिमें मैं कितने ही प्रसंगों पर सहस्रों लोगों से जठाय गया यह मातृ 'कौमी मातृ—बंदे मातरम्' आज भी मेरे कानों में गूँज रहा है। यही 'बंदे मातरम्' का इतिहास और सस्कार मेरे मन में था जब मैंने बंगाल के काम पर लिखित अपनी कविता में उसके विषय में भी लिखा था

“बड़ी बंगाल
 देख जिसे मुसकिल नेषों से
 मेरे कंठ से
 मधुर स्वर में
 कवि ने माया राष्ट्र-गान वह
 बंदे मातरम्
 भुजाम् मुफ्तमाम् मलयज गीतमाम्
 दास्य द्यामलाम् मातरम्”
 बंदे मातरम्

लो भगपति के उच्च चिह्नर से
 रास कुमारी के पदनस तक
 गिरि-गह्वर में
 बन प्रातर में
 मल्लखर्षों में शैबानों में
 खेतों में धी खसिहाना में
 गाँव-गाँव में
 नगर-नगर में
 डगर-डगर में
 बाहर-भर में
 स्वतंत्रता का महा मंत्र बन
 कंठ-कंठ से हुमा मिनामित
 कंठ-कंठ से हुमा प्रतिष्मनित
 पपकर जिसको आकाशी के शैबानों ने
 बितने ही
 बी मिना खबानी
 मिट्टी में कासे पाता में
 कितनों ने हथकड़ी-बेड़ियों की झन झन पर
 जिसको पाया
 धीर मुनाया
 मन बहलाया
 जब कि डाल के लिए गए थे
 देश प्रेम का मूल्य चुकाने
 नष्टि कठोर, खोर कारागारों में
 कितने ही जिसको जित्ता पर लाकर
 बिना हिचक के
 बिना धिक्क के
 हँसते-हँसते
 कूल गए जमीन बाने लहने पर

या कोम छातिवाँ काड़े हुए
गोसी की बीछारों में ।”

यह या बंदे मातरम् का संस्कार मेरे मन पर । नापसब पाठशाला के दिनों में ही मेरा परिचय ‘जनगण मन’ वाले रबीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत से हुआ । पर इसके साथ किसी प्रकार के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास की धमका बलिदान की कहानी नहीं जुड़ी हुई थी । बीच में साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के बढ़ने पर मुस्लिम लीग के द्वारा धीरे धीरे प्रायः सभी मुसलमानों के मुँह से यह बात मुताई पड़ने लगी कि ‘बंदे मातरम्’ में मूर्तिपूजा की गई है और मूर्ति पूजना इस्लाम के धार्मिक सिद्धांतों के विरुद्ध है । इसलिये वहाँ यह गाया जाय नहीं किसी मुसलमान का उपस्थित नहीं रहना चाहिए । बाद को मुझे भी मालूम हुआ कि ‘बंदे मातरम्’ का जो भाव हम लोग गाते हैं, वह संपूर्ण गीत न होकर उसका ऊपरी हिस्सा है और बाये बसकर इसी गीत में दुर्गा की उपासना की गई है । दुर्गा पूजा के संबंधों विरोधियों में दुर्गा के चित्र के साथ देने यह पूरा गीत छेदा देखा भी और तब मन में यह बात भी आई कि मुसलमान को कहते हैं उनमें कुछ तर्क सबब है यद्यपि जो पंथ राष्ट्र-गीत के रूप में स्वीकार कर लिया गया है उसमें किसी ऐसी-बेबता की उपासना न होकर भारतमाता की ही वंदना है । मैंने सम्मिश्रित बल्लों में इस गीत के सार्वजनिक होने पर मुसलमानों को समझा छोड़ दिया था । स्वतंत्रता प्रदान करने पर अनेक मुसलमान नेता उस समय समा में आए, जब ‘बंदे मातरम्’ का गीत समाप्त हो चुका । इनमें मिस्टर ललीकृष्ण का नाम पर्थों में भी आया था ।

‘जनगण मन’ बात रबीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत से भी एक इतिहास जुड़ा था । जब मुँह के समाप्त होने पर भी गुमापबन्ध बोस की आजाद हिन्द कीज की कहानी देश में पहुँची तो सन् ४२ की कुछसी हुई जनता में एक बिजली की तरह दीड़ गई । जो कुछ आजाद हिन्द ने किया था वह हमारे मित्र की गूहन और सम्मान का विषय बन गया । आजाद हिन्द के ये गाने थे, ये चिट्ठे थे ये सचकार थे यह भंडा था आदि-आदि । इसी बीच यह बात भी पुरानी कि आजाद हिन्द सरकार ने ‘जनगण मन’ को अपना राष्ट्र-गीत मान लिया था । आजाद हिन्द सरकार ने इस गीत का एक हिन्दुस्तानी रूप बना लिया था । इस गीत का प्रचार दीवता से होना शुरू हुआ और वह निरन्तर

को कि जैसे धारावाहिक हिन्दू के बिरोह के साथ हम सब सम्मिलित हैं मही 'जगन्मय मन' का पीठ हर जगह गामा जाने लगा और 'बरे मातरम्' और-बीरे पीछे पड़ने लगा। उसी समय से हमने 'जय हिन्द' का संछूट स्वीकार किया। पंडित मैट्रक ने इसपर एक लेख भी लिखा कि 'बरे मातरम्' को जबकि सब हम परस्पर मिश्रित पर 'जय हिन्द' कहना चाहिए और न आज भी अपने समस्त नागरिकों में 'जय हिन्द' कहना नहीं चलते। बताने की आवश्यकता नहीं कि जय हिन्द 'धारावाहिक हिन्द' गवर्नमेंट का संछूट था। 'बरे मातरम्' को छोड़कर ही मुभाषक बोध ने 'जगन्मय मन' को क्यों राष्ट्र-गीत माना इसे समझना कठिन नहीं है। 'बरे मातरम्' के साथ मुसलमान प्रतिपक्षा का बाव जोड़ हुए थे। ऐसी छीज में जिसमें हिन्दू-मुसलमान सब सम्मिलित हों वे किसी प्रकार के विवाद प्रकटा विरोध के लिए तैयार न थे। फिर 'बरे मातरम्' का गीत संस्कृतमय और कठिन भी था। उन्होंने इतना ही नहीं किया 'जगन्मय मन' के बदला रूप को हिन्दुस्तानी रूप भी दिया। ऐसा करने में उस सुन्दर कविता में बहुत-से रचना-दोष भी धा गए। पर जान पर ये सब का समय था। गणों की ओर ध्यान देने की प्रवृत्ति नहीं थी। पीठ ने सबकी भ्रष्टा समेटो प्येय मकल हुआ।

धारावाहिक हिन्दू छीज के बिरोह के पूर्व यदि राष्ट्र-गीत का नाम से किसी बोध पर ध्यान था मकल था तो वह 'बरे मातरम्' ही था। धारा 'बरे मातरम्' के साथ 'जगन्मय मन' उसका प्रथम प्रतिद्वंद्वी है। दोनों गीतों से जो भावनाएँ बुझ गई हैं उनकी तुलना करना उचित नहीं है। एक में यदि हमारी भ्रष्टा और उर्ध्व बुझी हुई है तो दूसरी में हमारा बिरोह और साहसी का पहना मपना जुड़ा हुआ है। एक में यदि हमारा स्वाभ और बलिदान जुड़ा हुआ है तो दूसरे में हमारी शक्ति और भीरता जुड़ी हुई है। 'बरे मातरम्' के पीछे न यदि भारत माता अपने कोटि-कोटि मुजाहदों में करबाम लेकर लड़ी हो गई है तो 'जगन्मय मन' में जंगे वह अपने धनु को पराजित करने के लिए बैग से बन पड़ी है। एक शक्ति का और दूसरा शक्ति का गीत है दोनों को साथ तुलना कर आप उनकी ध्वनि न पड़ी धारावाहिक पाएँगे।

राष्ट्र-गीत की जहाँ करते समय मज्जा 'भंडा ठंडा गेहूँ हमारा' का भी ध्यान धाता है। उसका धारावाहिक कोई नाम भी नहीं दिया। धारावाहिक

साहित्य का ऐसा ही संत होता है। उसमें कोई कबित्व गुण भी नहीं था। रचना-शैली भी उसमें बहुत बे। जब मंडे का पीत पसब किया गया तो दूसरों से प्रभावित और अपने से तटस्थ हिंदी कवियों की राय भी नहीं थी। पीत कम पड़ा और उसने अपना काम किया। कम ही लोगों को यह बात मालूम होगी कि यह मंडे का गीत भीसिक नहीं है। यह गीत 'यूनियन जैक' पर मिले गए एक गीत में लिखा गया था। 'यूनियन जैक' पर वह कविता १९२५ की फरवरी की 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। रचना किसी समन मभाई की मालूम होती है, जिसे अपना नाम देने में भी शर्म मालूम होती थी। इसीसे उसने अपने कलमी नाम 'सत्कविदास' से यह कविता छपाई थी। १९२९ में प्रसिद्धोप भादोलन के पत्रात् कवियों में भी कोई इस मनोवृत्ति का वा इस पर प्रभाव होता है। कौतूहल के लिए कुछ पंक्तियाँ दे रहा हूँ जिससे आपको पता लग सके कि मंडे के गीत का लेखक इस 'सत्कविदास' का कितना श्रेणी है।

‘संज्ञति भृति तिरमा प्यार

मंडा ऊँचा रहे हमारा।

उमकी लवि धरनि बासा

स्वजनों को हयनि बासा

उस मंडे की छाया में अब

बनो साथ ही बोले हम सब

कँवर हिय प्रभा के प्यारे,

रहे मुझी सम्राट हमारे।”

जिन पीत के मुठ्ठे में 'यूनियन जैक' पड़ा हो उसके भूसाए जाने पर प्रभाव माल होने पर मुझे कोई दुख नहीं है। इसके विषय में इतना भिन्न की करार इसलिये भी कि कुछ विचारों से इसे भी राष्ट्र-गीत मानने की कुछ धारणा कभी-कभी कालों में पहुँची।

‘जनगण मन’ और ‘बरेमातरम्’ की प्रतिबन्धिता में जनगण मन को पंडित जवाहरलाल नेहरू से बल प्राप्त हुआ है। उन्होंने सर्व प्रथम इन बात को उठाया कि ‘बरे मातरम्’ का पीत सब और ‘जनगण’ का प्रतिमय है। यह बिलकुल ठीक बात है। बावों पर इसे बजाने की सुविधा

के अतिरिक्त प्रकृति के इस युग में हमें गतिमय भीत को ही अपनाना चाहिए। आबाद हिन्दू कीर्ति के साहसी कारनामों से पंडित नेहरू एक समय फड़फड़े से घोर उन्होंने इन्हीं के बल पर जैम त याहूर होते ही सम् ४२ की मटे-मलती बनता में जान फूँकी थी। यह बात भी उनके मन में घरघराहणी कि आबाद हिन्दू सरकार ने उसको अपना राष्ट्र-भीत माना था। 'अवेमातरम्' को वे नहीं चाहते इसका कारण संभवतः वैभव नहीं है कि उसकी गति मंद है। हमारे देश का एक धर्म इसका विरोध अपने दार्शनिक सिद्धांतों के कारण करता रहा है। पाकिस्तान बनने के बाद अगर धर्म हिंदू चाहें तो उनकी इस भावना की जपेला कर सकते हैं। पर पंडित नेहरू कभी ऐसा करके सुखी नहीं हो सकते। संभवतः 'अवेमातरम्' को छोड़ने के पीछे उनके मन में मुसलमान जनता की एक भावना का भी ध्यान है। यह उदात्ता घोर बरिवादिनी पंडित नेहरू के अनुकूल है और इसे हमारा समर्थन मिलना चाहिए। 'अनगण मन' को स्वीकार करने की कुछ कठिनाइयाँ भी हैं। वह अपने संगीत में पूर्ण है और बैठ घाँघ पर बजाने के उपयुक्त है। प्रगति युग में बनि का आभास भी देना है। उसके साथ हुआयी आबादी की पहली किरण का इतिहास भी बँबा है। पर हर रचना पर कुछ युग की छाप पड़ती है। तबब ने हमारे देश का नक्शा ही बदल दिया। पूरे का पूरा 'सिब' हिन्दुस्तान की सीमा से बाहर बना गया है। 'अबाब' और 'अब' हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दोनों में हैं। विधान सभा के प्रथम उभापनि भी सविश्वानंद सिन्हा ने एक बार लिखा था कि इस गीत में मेरे लूके का (बानी बिहार का) नाम ही नहीं है मैं कैसा इसे अपना राष्ट्र-भीत मानूँ। कभी-कभी पत्रों में कुछ लोगों ने निगा है कि यह रचना कार्य पंचम के लिए लिखी गई थी। पता नहीं इसका कुछ सबूत भी उनके पास है या नहीं। यदि ऐसा है तो हम अपने राष्ट्र-भीत के साथ लेने संबंध कर कैसे परिभाषित कर सकते हैं। फिर इस 'आम्य विधाना' में कुछ मध्यरातीन प्रकृति भी जान पड़ती है। हम आर्यवादी बल तक बने रहें बल तक 'आम्य विधाना' के नकेंनों पर ही चलने रहें। धानेबानी दुनिया में हमें आर्य-भारीने न बँटकर कुछ उद्यम भी करना होगा। हम भारत भी बहुत-सी लोगों को 'आम्य विधाना' गटलना है। एक बात और भी है। इस गीत में देश का सम्पर्क कर नहीं है। न तो हमारी भूमि का और न इसके निवासियों

को । देन क्या है—जंबाब सिबु पुनरात मरठा प्रादि-प्रादि । निवासी क्या है—हिंदू बौद्ध सिक्ख जैन पारसी प्रादि-प्रादि । क्या हमारा यही सपना है कि भारत की भूमि प्रांतों में बँटी रहे और भारतवासी जनों के यत्न में बिभक्त रहें ? यही पर है प्रांतीयता और सांप्रदायिकता की जड़ जिसे काटने को हमारे नेता लगे हुए हैं । फिर क्या हम प्रत्येक धर्मसर पर अपना यह राष्ट्र-मीन बाँट कर अपनी सांप्रदायिकता और अपनी प्रांतीयता की स्मृति जगाते रहेंगे ?) हुनाय सपना है एक भारत एक भारतीय । यह भीत हमें उस घोर न बढ़ने देना ।

क्या एक स्वतंत्र जाति यह नहीं कर सकती कि पुराने से बिल्कुल मुंह मोड़ कर कुछ नए का निर्माण करे । इस तरह की प्रकृति भी कम नहीं है ।

जनकल में एक बंसीय हिंदी परिपक्व है । उसने हिंदी के लिए कुछ अच्छा काम भी किया है । उसने कुछ दिन हुए मेरे पास एक पर्चा भेजा था जिसमें इस मान की अपील की गई थी कि चूंकि हिंदी हमारी राष्ट्रभाषा है इस कारण हमारा राष्ट्र-गीत हिंदी में होना चाहिए । 'जबेमातरम्' और 'जनगण मन' दोनों ही बंगला में हैं । और यह हिंदी भीत जन्मने वाला था भी कमजोर प्रस्ताव के बावजूद नाटक के बीजे बंक के एक भीत को । भीत यह है

“हिमात्रि तुम भूमि से
प्रबुद्ध-बुद्ध भारती
स्वयं-देवा समुद्रमला
स्वतंत्रता पुकारती
धर्मार्थ और पुत्र हो हृदयप्रतिम शोक तो
प्रसन्न पुष्प पंथ है बड़े बसो, बड़े बसो ।
धर्मार्थ कीर्ति रस्मियाँ
विकीर्ण दिव्य बाहु-धी

१. तरह की के घर में यह लोक के निरत होना है कि अपने दिनों में हमारा प्रांतीय और सांप्रदायिकता की धर्महिंदी से हमारे राष्ट्र-धर्म ने निरत होना देना है ।

—लेखक (१९११)

छपूत मातृभूमि के

रखो न घूर साहसी ।

धराति मैथ्य सिंधु में गुहाङ्गमनि से जमा

प्रसीर हो, बसी बनी घड़े जमो, बड़े जमो ।

राजशासकी किनष्ट और उच्छ्वारण कठिन है । 'बड़े मातरम्' की मन्त्रित हमें इमतिह निगमन की तैयार है कि उसके साथ हमारे देश के मंचर का एक इतिहास जुड़ा है । पर हम यीत से कोई इतिहास नहीं जुड़ा है । फिर वह राष्ट्र-मात न होकर प्रवृत्ति-गीत है । हम जो मंचर में वार्ति की स्थापना करना अपने राष्ट्र का मूल संरिग और मिठात मानते हैं हर समय शत्रु की बलना नहीं करना चाहते । शत्रु-शत्रु करते रक्षा उससे बरत घपका उने उराने रहने की बात सोचते रक्षा कामरता है घपका मुकाबल । फलने का तात्पर्य है कि प्रसाद भी की रचना का सम्मान करने हुए भी मैं इन राष्ट्र-गीत के रूप में स्वीकार करने की अपनी राय नहीं दे सकता । परिपत्र का काम बहुत ज़ायदे से प्रचार्यत्मक हंग पर किया जा रहा है । न जाने कितने लोगों के हस्ताक्षर इन विषय पर सब एक प्राप्त हो जा होंगे और वायर उन्हें बिजान समा के सामने भेजा भी जाएगा परन्तु मैं इसे समझता ही नहीं कहूँगा ।

इस बीच मध्यरात के मुख्य मंत्री की रविचकर दुस्त की घोर में कुछ दिव हुए पत्रों में एक बलम्य राष्ट्रीय मान के सर्वथ न प्रचारित हुआ था । उन्होंने 'कृष्णायन' के वगस्वी लेखक और मध्यरात के विद्या मंत्री की इतिहासनाम मिय से एक चीन की रचना कराई है और वे चाहते हैं कि वह चीन राष्ट्र-गीत के रूप में स्वीकार कर लिया जाय । उनका कथन है कि वह चीन किसी भारत भाव्य-विमाना की मेरा में न होकर स्वयं भारतमाना की मेरा में है । एक चीन में 'बड़े मातरम्' और 'जनगण मन दोनों के गुणों का समावण है और भारतीय मंत्रिनि मुम-मुग से जिम मिठात की मानती चाहें है उनका प्रतिपादन है । चीन 'जनगण' की द्युन पर है । इस कारण जो मंत्रीन लगभ अपेक्षित है वह भी जममें है । चीन छोटा भी है और राष्ट्र-गीत छोटा होना भी चाहिए । 'जनगण' के भी एक-दो बर पाण जाने दें । 'बड़े मातरम्' भी अपने मयूनी रूप में नहीं माना जाता । चीन यह है

“जनक-सम-अविनाशिनि जय हे महिमणि भारतमाता ।
 हेम-किरीटिनि विष्णु-भेदने उदधि-भीत पद-क्रमसे
 गंगा मधुना रेखा कृष्णा बोरावरि जय विभसे
 विविध ठरपि अविचलते घात धरित सयुक्ते
 सुध-सुध अभिनव माता,
 जनक-सम-अविनाशिनि जय हे महिमणि भारतमाता ।
 जय हे जय हे जय हे महिमणि भारतमाता ।”

अगर हम यह मान लें कि रबींद्रनाथ ठाकुर के गीत को परिवर्तित-संशोधित करके अपने राष्ट्र के लिए हमें नया गीत बनाने का अधिकार है तो मैं इस प्रयास पर बर्बाद होना चाहता हूँ। इसमें मैं कोई हानि नहीं समझता। स्वर और कुछ छन्द रबींद्र के अक्षर हैं पर गीत अपनी कल्पना में उनके गीत से भिन्न है। भारत को माता रूप से देखने की आकांक्षा सर्वत्र भारतीय है। भारतीय जीवन में माता का जो स्थान है उसपर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इससे भारत की सजीव एकता प्रकट होती है। प्रांतीयता की रज भी इसके पान नहीं है। ‘वशि मातरम्’ से ही सबभर यह भारत का मातृ स्वरूप स्वीकार किया गया है। ‘महिमणि’ में उसकी ‘सुध व्योम्ना’ ही नहीं ‘घारे बहो न अन्ध हिन्दुस्तान हमारा’ की संक्षेप रूप में आ गया है। इसी प्रकार ‘अविनाशिनि’ मूल गीत के ‘अविनाशरु’ की अर्थ भी समेटे हुए है। हमारा ध्येय भी यही है कि प्रायः प्राय का ध्यान छोड़ हम संपूर्ण भारत का सजीव चित्र अपने हृदय में रखें। इस कविता की प्रथम पंक्ति बहुत ही उत्तम और सारगर्भित है। प्रवाह और उथल में भी यह पूर्ण है। यमक और अनुशास वर्य भी और उच्चारण सारथ्य का तो यह एक नमूना है। पूरी पंक्ति में एक भी अनुशासक नहीं आया।

कुछ पता नहीं कि श्री रविधरकर धुसस को अपने प्रयास में कितनी सफलता मिलेगी सबका विधान समा के कितने सोय उनके भीत या कहना चाहिए, श्री इतिहासप्रवाद श्री मित्र के भीत का समर्पण करे। पर यदि इसकी कुछ संभावना हो तो मैं महाकवि श्री मित्र भी श्री आजा से और उनसे समा मांगते हुए, उसमें कुछ संशोधन का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। मैं किसी अल्पाति अल्प वरि के पक्ष में भी कुछ जोड़ने-बटाने की बातकमी नहीं सोचता और मित्र की

सपुत्र मातृभूमि क
रको न धूर साहसी ।

मरति सैन्य सिंधु म मुवाइयामि मे जमो
प्रवीर हो जयी जमो यो जमो बड़े जमो ।"

राजदायमी स्मिष्ट और उच्चारण कठिन है। 'बड़े मातरम्' की संस्कृत हम इसलिए निगलने को तैयार हैं कि उसके साथ हमारे देश के मंदिर का एक इतिहास जुड़ा है। पर इस चीज में कोई इतिहास नहीं जुड़ा है। फिर यह राष्ट्र-नात न होकर प्रगति-नीति है। हम जो मंदिर में माति की स्थापना करना अपने राष्ट्र का मूल लक्ष्य और मिश्रित मानते हैं हर समय धनु की वस्त्रता नहीं करना चाहते। धनु-धनु करते रहना उससे बड़े भयंकर जमे उराने रहने की बात सोचते रहना कमरता है भयंकरता गुहापन। कहने का तात्पर्य है कि प्रसाद की की रचना का सम्मान करत हुए भी मैं इसे राष्ट्र-नीति के रूप में स्वीकार करने की अपनी राय नहीं दे सकता। वास्तव्य का काम बहुत ज़ादने से प्रचारकमक हंग पर किया जा रहा है। न जाने कितने लोगों के हृन्मार्ग पर विषम पर सब तक प्राण हो गए होंगे और धायक उन्हें बिधान समा के नामने सेवा भी पाएगा परन्तु मैं इसे समझाती नहीं कहूँगा।

इस बीच मध्यप्रान के मुख्य मंत्री श्री रविशंकर शुक्ल की घोर म दुष्ट दिन हुए पत्रों में एक बलव्य राष्ट्रीय मान के संबंध में प्रकाशित हुआ था। उसने 'वृष्णापन के मातृवी लेखक और मध्यप्रान के विद्या मंत्री श्री इतिहासनाथ मिश्र ने एक नीति की रचना कराई है और बचावत है कि यह नीति राष्ट्र-नात के रूप में स्वीकार कर लिया जाय। उनका कथन है कि यह नीति किसी भारत-माय-विधाता की सेवा में न होकर स्वयं भारतमाया की सेवा में है। इस नीति में 'बड़े मातरम्' और 'जनमल मन दोनों के पुण्य का समावेश है और भारतीय संस्कृति पुण-पुन में जिस गिजाग को मानती आई है उसका प्रतिपादन है। नीति 'जनमल' की दमून पर है। उस कारण का नीतिगत उमम भवितान है वह भी उममें है। नीति छोटा भी है और राष्ट्र-नीति छोटा जाना भी चाहिए। 'जनमल' क भी एक-दो पद गलत जात हैं। 'बड़े मातरम्' की अपने गंगूर्ण रूप में नहीं पाया जाना। नीति यह है।

“जनपद-भूमि-अभिवातिमि जय हे महिमणि भारतमाता ।
हेम-किरीटिनि विजय-मेखसे उज्ज्वल-नील पद्म-कमले
गंगा समुद्रा रेखा कृष्णा घोषावरि जल विभसे
विदिष तदपि अविभक्ते प्रांत समित्त संपुक्ते
सुय-मुग अभिनव माता,

जल मल क्लेश विनाशिनि जय हे महिमणि भारतमाता ।
जय हे जय हे जय हे महिमणि भारतमाता ।

भगर हम यह मान लें कि रबीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत को परिवर्तित-संशोधित करके अपने राष्ट्र के लिए हमें नया गीत बनाने का अधिकार है तो मैं इस प्रयास पर बचाई देना चाहता हूँ। इसमें मैं कोई हानि नहीं समझता। स्वर और कुछ छन्द रबीन्द्र के अनुरूप हैं। पर गीत अपनी कल्पना में उनके गीत से भिन्न है। भारत को माता रूप से देखने की आकांक्षा सर्वत्र भारतीय है। भारतीय जीवन में माता का जो स्थान है उसपर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इससे भारत की सजीव एकता प्रकट होती है। प्रांतीयता की गंध भी इसका पाम नहीं है। ‘जय मातरम्’ से ही समझें यह भारत का मातृ स्वल्प स्वीकार किया गया है। ‘महिमणि’ में उसकी ‘धूम्र ज्योत्स्ना’ ही नहीं ‘सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा’ भी संक्षेप रूप में आ गया है। इसी प्रकार ‘अभिवातिमि’ मूल गीत के ‘अभिनामक’ की ध्वनि भी समेटे हुए है। हमारा ज्येष्ठ भी यही है कि प्रांत प्रांत का ध्यान छोड़ हम संपूर्ण भारत का सजीव चित्र अपने हृदय में रखें। इस कविता की प्रथम पंक्ति बहुत ही उत्तम और सारगर्भित है। प्रवाह और संगीत में भी यह पूर्ण है। यमक और अनुप्रास बरतें मैत्री और उच्चारण सारथ्य का तो यह एक नमूना है। प्रती पंक्ति में एक भी संयुग्माक्षर नहीं आया।

मुझे पता नहीं कि श्री रबिंद्रकर शुक्ल ने अपने प्रयास में कितनी सफ़ाता मिलेनी अथवा विज्ञान सभा के कितने लोग उनके गीत या कहना चाहिए, श्री द्वारिकाप्रसाद जी मिश्र के गीत का समर्थन करने। पर यदि हमकी कुछ संज्ञावत्ता हो तो मैं महाकवि श्री मिश्र जी की आज्ञा से धीरे-धीरे उनसे सभा माँगते हुए उनमें कुछ संशोधन का प्रस्ताव रखना चाहता हूँ। मैं किसी अस्पष्टता मत्त कवि के पदों में भी कुछ जोड़ने-बटाने की बात कभी नहीं सोचता और मिश्र जी

की रचना में कुछ संशोधन करने की बात तो बूझता ही सीमा साबना ही है। यदि मिथ जी की यह रचना उनकी धर्म रचना के समान होती तो मैं उसमें कुछ परिवर्तन प्रस्ताव परिवर्तन करने की बात के मोह को दबा दता। परंतु यह भी तो यदि ठाढ़-सीत होमे या रहा है तो मैं अपनी बुद्धि के धनुमार उसमें कुछ परिवर्तन करना चाहूंगा। मुझे आशा है कि मेरे आशय को समझ लेने पर मेरी बुद्धता सम्य होगी।

प्रथम पंक्ति का एक-एक अक्षर अपने स्वाम पर घटन है और उब पर सुबार नहीं हो सकता। दूसरी पंक्ति में 'किरीटिनी' शब्द मुझे नहीं प्रप्यत लया। यह पंक्ति के ध्वनि-धाम्य को बिबाधता है। इसी प्रकार 'उदधि बीन' में 'ब', 'व' इस क्रम में आते हैं कि उनका उच्चारण करना कठिन है। आगे का 'त' भी उही कर्तुं का है। इस पंक्ति को मैं यों कर देना चाहूंगा

“हेम दुल्लभे विष्य मेकमे सिधु नमित पर वमसे।”

जिसे भी ध्वनि का कुछ बोध है यह इस पंक्ति में अधिक तर्फीय और प्रवाह दय नेमा। 'हेम कछ' हमारे गिर धी का प्रचलित नाम है। केवल और कुतल एक ही है। इसमें सांस्कृतिक संबंध भी स्थापित होता है। कुतल और मेकमे में ध्वनि साम्य आ जाता है। 'ने' की निची हुई ध्वनि में देख का विस्तार भी ध्वनिमयित होता है। इसी प्रकार 'सिधु' जैसे विषय की ध्वनि को ध्वनि ध्वनि करता है साथ 'उदधि बीन' की उच्चारण कठिनाता भी नहीं रह जाती।

तीसरी पंक्ति में कोई परिवर्तन नहीं चाहिए। विविध तदधि ध्वनिमयों बहुत सुंदर ठुका है। चौथा गद्यांशक होते हुए भी इसमें धर्म-गर्मता है। हमारी पुन-पुन की मारी गंजति का एक यही नदय है। इसमें देव के विभावन के परबाम् भी जो दोनों शब्दों में लजता है उसका मनेन है और साथ पर जैसे यह मध्यम-ना सपाता है। क्या यही बात गार्गीजी ने भीगी तरह से नहीं कही। मंगार में मीरी करने की आशाया फिर अपनेबाले हम क्या अपने एक कते हुए धर्म को ही विभिन्न और धनम समझेंगे। 'मान धानि गमुस्ते' को मैं 'सावि धानि संयुस्ते' कर देना चाहूंगा। इसमें धर्म दोनों होंगे धानि और धानि ग संयुक्त प्रस्ताव धानि की धानि में संयुक्त। 'मान धानि भी रत्न' तो मुझे कोई धारति नहीं है।

‘दुग्ध-मुक्त अमिष माता’ में कोई नई बात नहीं कही गई। रचना-शैली भी एक है। ‘माता’ फिर जा कर ‘मातृ माता’ का शुरु बनता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीत में इस पद का शुरु धमक होता है ‘विधाता’ का ‘माता’ धारि। इस पंक्ति को मैं यों कर लेना चाहूँगा

‘त्रिविध ताप-तम माता’

अपनी ध्वनि से त्रिविध ‘त्रिविध’ की ध्वनि की पुनरुक्ति करता है और इस प्रकार उसकी गद्यात्मकता को जिसका संकेत मैंने ऊपर दिया है, कुछ कम कर देता है। फिर ये वही त्रिविध ‘तापा’ है जो ‘राम राम नहीं काहुँहि व्यापा’। हमारे बापू स्वराज्य से ‘राम राज्य’ का स्वप्न देखते रहे। उनकी इस कल्पना को बी हम इस बीच में स्थान दे दें तो अच्छा होगा। इसी प्रकार जो ‘महि’ है ‘हेम कंतल’ है, ‘विमल’ है उसे ‘तम’ का विनाश करना ही चाहिए। प्रायः चाहें तो तीन प्रकार के तम की कल्पना भी कर सकते हैं। फिर ‘माता’ है, जो ‘माता’ बार-बार ध्यान के रचना-शैली को बचा देता है। अनुमास उच्चारण-सरसता ला देता है। इसको धमक स्वीकार कर लें तो ‘स्वप्न विना धिनि’ बेकार हो जाता है। ताप तो कदा ही कुछ। फिर ‘अमल विनासिनि’ एक नकारात्मक मुण्ड का बाध करता है। इस पंक्ति को मैं यों चाहूँगा

‘अनपल-यम प्रकाशनि अम है महिमलि भारत माता’।

भुना है अमरीका में स्वतंत्रता की मूर्ति के हाथ में एक ममान है। भारत माता की स्वतंत्रता की मूर्ति बनें और अमर गुरु का पद प्रकाशित करें, उन्नति के पद पर से जायें। इस पंक्ति के द्वारा भारतमाता की स्थिर मूर्ति गनिमान हो उठेगी।

मेरी प्रार्थना है कि महिला के पारखी भरे इन मन्त्रोक्तों पर ध्यान दें और धमक उनको सुनाई विधान सभा तक हाँ तो व इस बात को नहीं तक पहुँचायें। यदि ‘अनपल’ के परिवर्तित रूप पर विचार किया जाय तो मैं चाहूँगा कि मेरे इन सन्धोक्तों पर भी कुछ विचार किया जाय। राष्ट्र-बीत रोड रोड नहीं बनते। उसे पर्यटन करने में हम जितने जुमे मस्तिष्क से मोच-विचार कर सकें उतना ही अच्छा।

मेरा समाप्त करने के पक्ष में फिर भी निम्न भी से लमा चाहूँगा। और यह भी स्वीकार करना चाहूँगा कि उनकी पंक्तियों में यत्र-यत्र परिवर्तन करने

हमाम की घोर घा रहे हैं। बास्ती के नाम घाते ही उन्होंने अपने दोनों हाथों में "मे उठ लिबा घोर मेकर तीर की तरह अपने गह्वारे के कमरे की घोर चले गए। बाते समय इतना बर कह गए, "ओ काम जिस वस्तु करना है करना न करना वस्तु के साथ दनाबाजी है।" यह तब इतनी पसंदी हो गया कि व हुससे बन पड़ा कि कुछ बास्ती में जायें न यह कि उम बर्म हुए बर्तन को उनके कुड़ा लें घायल भय भी था कि इस घीना-अपटी में कभी बर्म पानों बाहर छतकर हाथों को न पला व। वे तो उस घाय घोर बर्तन उठाकर चले छो गए। किसी तरह का उम्हने मौका ही न दिया।

लेत बहावत लचन पाड़े

मला न काहु रहे सब ठाढ़े।"

बापू ने अपने समय पर स्नान किया। हम समय के साथ बैल कर सूर्य के पर बापू तो समय के साथ 'दनाबाजी' नहीं कर सकते व। गपव के साथ ओ उन्होंने बाबा किया था उसको उम्हने पूरा किया। उनका हाथ चल गया था। माम को हमन बैठा उनके झुठों घोर तर्जनी पर चिन्नी लफ़ेद फिरम की दबा मदी थी। समय की पाखंडी तो बहुतां में मिछलाई, बर अपना हाथ जलाकर केवल बापू न बिलसाया। और ऐसा मिछलाया कि जैसे अपना मंथेय हृदय पर राम रिया। मेरे घोर ताबियों के ऊपर उसका क्या समर हुआ मैं नहीं जानता पर मुझे अब दिन से प्रभाव नहीं म्याता।

"तब ही बोधि न म्यापी माया।"

अब कभी ऐसा अवसर लाया है कि किसी निश्चिन्त समय पर कोई वाक करना या बुरा करना है तो निनी बात या कहाने को बीच में लाकर उसे टालने या समझें देरी करने को बैरा मन नबाध नहीं कर पाया। कुछ बापू का जता हाथ बाद आता है घोर उनके मध्य भेरे कारों के मूँवने लगते हैं।

"ओ काम जिस वस्तु करना है करना न करना वस्तु के साथ दनाबाजी है।

उन दिनों बापू की हिंसी अच्छी नहीं थी बर वे अपनी छटपट वाली में ही घपवा ताछ घाघय कह जानत थे। वे घायों में बीजत वही के उनका हाथ बोलता था उनका म्यलिय बोलता था उनकी माचता बोलती थी। घोर उनके बोव हृदय के कुल जाते व बाज केकार लड़े रहते थे। मैं बहुत दिन पड़ी

समझता रहा कि 'बल्ल के साथ दमावाजी' बापू की भटपटी हिंसी का एक मसूला है। पता नहीं के क्या कहना चाहते थे और हिंसी में उनको यही राज्य मुलम हो पाए। पर धन सोचता हूँ बापू विस्तृत नहीं कहना चाहते थे। और जो के कहना चाहते थे उसको दूसरे धर्मों में नहीं कहा जा सकता था। एक राज्य एक भाषा से कम में नहीं व्याप्य में नहीं। बापू बनिए न अपने बनिरापन पर उन्हें गर्व था। व्याप्य राज्यों के मायसे में के सबसे अधिक बनिए थे। तोलकर दोलते थे। न अकरत में व्याप्य न अकरत में कम। और हर राज्य सच्चा और यथार्थ था।

हम जो कुछ करने का निश्चय करते हैं वह अथमुच समय के साथ हमारा बारा है। हमारा सारा जीवन ही काम महाकाम के साथ एक प्रतिमा है। हम अथमुच दिनानुदिन अपने कर्तव्यों को करके इस बारे को पूरा करते हैं। अपने निश्चयों से दिवते हैं तो समय के साथ बाधा-पिनाफी होती है। समय क्या हमें लबा करेगा इस महान अवस्था के लिए। जिन्होंने समय के हाथों बंद पाया हो, वे कर अपने से पूछें कि समय के साथ उन्होंने कितनी बलाबाजी की है। इन मूख धर्मों की व्याख्या के लिए कुछ मिलटों का समय अपर्याप्त है। इससे बापू के उन राज्यों की एक बार फिर पुनः पुनः यह बातें समान्य करता है जो काम जिन बल का ना है करता, न करता बल के साथ बलाबाजी है।¹⁷

[१२४६]

भारत को जिसका सरोजिनी नायडू (रेडियो वार्ता)

घाब में जब सरोजिनी नायडू के बारे में सोचता हूँ तो मुझे सहसा घंघेरी बहि जाउनिन की वे पतियाँ याद आती हैं जो उन्होंने रोपी के विषय में लिखी थीं। पंक्तियों का आचार्य यों है। क्या तुमने रोपी को साधारण मनुष्य के बमान देना था ? क्या वे सामने खड़े हो गए थे और उन्होंने तुमसे बात की थी और क्या तुमने भी उनमें कुछ कहा था और उन्होंने उसे सुना था ? यह कितना आश्चर्यजनक सन्नता है कितना सत्य समता है।"

घाब भी बहुत-म सोम मौजूद है जिन्होंने सरोजिनी नायडू के व्याख्यान सुने थे उनमें मुझ से उनकी बहिरार्थ सुनी थी। उनके पास बैठे थे और उनमें बातें की थीं। और मुझे इसका विश्वास है कि जिन्हें भी ऐसा सुयोग मिला था वे उस अपनी सुधि में मगलित किए हुए हैं और सामर ही कभी वे उस मुना सन्नते। इन औभाव्यवानों में इन पतियों का मधुर भी अपने को रस लयता है। घाब तो बिजान है यह संभव कर दिया है कि हम चाहें तो अपने नेताओं कीवियों महापुरुषों का स्वर सुर्लितन रस सकते हैं। पर यह साधन सरोजिनी नायडू के जीवन-काल में इतना सज्ज सुलभ नहीं हुआ था। सामर उनका बोला और कहा हुआ बहुत कम सुर्लितन हुआ है पर हमारी विद्यनी पीढ़ी के नेताओं में यदि किसी के स्वर के समार, मायुर्व और घोष को सज्ज मयिक सुर्लितन रखने की आकांक्षना थी तो सरोजिनी नायडू के स्वर की। जिन्हें जाना में उनकी मूर्त नहीं हुई है वे अपने को मय्य जान सकते हैं।

हमने अपनी आकांक्षी थी जो सफ़ाई मड़ी उनके मनानियों के सरोजिनी नायडू मय्य जाने की गति में थी। सामर वे हमारी यह सफ़ाई केवल सफ़ाई नहीं थी पर भारत का पुनर्जीकरण भी था। भारत के पत्रकारों के मय्य का

यहाँ एक बार मिहो की दृष्टि की वहाँ दूसरी

घोर कोकिल का मधुमय गान भी था। सरोजिनी नायडू को Nightingale of India 'बुलबुलेश्वर' या 'भारत कोकिला' कहा जाता था। पर यह कोकिला ऐसी नहीं थी जिसने केवल गाकर अपने कर्तव्य की इतिथी समझ ली थी उसने मित्रों की बहादुरी से भी होड़ ली थी और धाबादी के धनुषों से लड़ी भी थी।

Where brave hearts carry the sword of battle,
This mine to carry the banner of song—

वहाँ वीरों की ललकारें जाती हैं वहाँ मैं वीरों की पताका ले जाती हूँ।

मैंने इस प्रकार के विचार प्रसर सुने हैं कि सरोजिनी नायडू अपने लम्बे रूप में कवि की और यदि वे राजनीति के मंच में न पैरों पड़ीं तो शायद वे साहित्य और काव्य की बहुत अधिक सेवा करतीं। इस प्रकार के विचारों में मेरी मेलमात्र सहानुभूति नहीं। निरुद्धों में पड़े वीर युगगुनाने वाले कवि को मैं बहुत स्वस्थ नहीं समझ सकती। कवि का जो रूप मुझे सबसे अधिक भाता है वह यही है—'भार मिर पर, कठ में स्वर'।

मुझे जिस बात का अफ़सोस है वह यह है कि सरोजिनी नायडू जैनी प्रतिभा ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम अपनी देश की भाषा का क्यों नहीं चुना। यदि उन्होंने ऐसा किया होता तो उनकी प्रतिभा का अधिक विचार ही न होता। देश की साहित्यिक मर्यादा की वृद्धि होती और उनकी बाएँ इस देश के अधिक लोगों के लिए प्रेरणादायक मित्र होती। अभी तक मुझे मालूम है अंग्रेजी काव्य साहित्य के इतिहास में शायद कहीं उनका नामाङ्कन नहीं। काव्य मकानों में भी शायद ही कहीं उनकी कविता को स्थान दिया गया हो। मजबूत तो यह है कि बिदेसी भाषा इस किमती ही धन शायदा ने भी नहीं उमर कुछ खजाना के मकान हमारी सामर्थ्य के बाहर है।

इसके लिए हमारे देश की परिस्थितियाँ बहुत कुछ ज़म्मेदार हैं। मुतामी की घबराहट में अंग्रेजी भाषा की सर्वश्रेष्ठता की बात हमपर बिना लगे पड़ी थी। सरोजिनी नायडू की शिक्षा-बीजा में अंग्रेजी का बड़ा महत्त्व था। इंग्लैंड में रहकर भी उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी। कविता में रुचि थी। उन दिनों लंदन में इण्डियन सी० ई०एम अपने घर पर दोमवार की शाम को एक साहित्यिक पाठ्य विद्या करने थे। सरोजिनी देशी भी उनमें सम्मिलित होनी थी और उनमें

उन्हें Little Indian Princess कहा जाता था—भारत की छोटी राजकुमारी। उनकी एक कविता Indian Weavers और ईदुस की एक भारतीय कविता में मान भाषा कल्पना की बड़ी समता है और संभव है कि सरोजिनी नायडू ने ईदुस से प्रेरणा भी ली।

पहल पहल जब सरोजिनी देवी ने कविताएँ लिखीं तब उन्होंने पूरे संघेरी परिवार को अपना लिया था—घंघेरी के कपड़ों, घंघेरी की भाषाविशेषता वाली घंघेरी का वातावरण। सीमांत से उन्होंने ये कविताएँ उस समय के प्रसिद्ध समानोच्च एडमंड ग्राह को दिखाई। ग्राह ने उन्हें बड़ी अच्छी समझ की इस तरह की कविताएँ आप लिखेंगी तो वे अनुकरणीय मान होकर रह जायेंगी आप घंघेरी में बहुत निखें पर वातावरण अपने इस का है। सरोजिनी देवी की यह सलाह ठीक लंबी और इसका उन्होंने आजीवन पालन किया।

यदि हम उनकी कविता के विषयों को भी देखें तो इस बात सचपा रि भारत के जीवन में जो विशेष रूप से भारतीय है विश्व-मय है रंगीन है उसे उनकी आँखों ने पकड़ा है। कविताओं में हम उन्होंने अपनी भावनाओं से आप मय किया है कल्पना से रचित किया है। वास्तव में उठनेवाले रम्य मायक भारतीय पुलाहे काराचंदन तट के मछवाड़े, सिरा चक्की पीछनेवाली मेहरी पावना मनी भारतीय गर्जन नल-नमस्की परधानतीन, रास्ते का गोर-गुन घानकुड़ा के मछवाड़े, मयवान बुज नर्मत पंचमी गुमबुद्ध, चंपक बुझी बेचने वाली नाग पंचमी राधा का भीत धर्म का मोह ईश बरना बूझा नाचे माग की नमाइ नदिर, सखी इमामबाड़ा बृवावन का मुरलीवाला मिगारी बमन घंटियाँ मोली काली माई नर्मत गुलाब घाटि।

उन कविताओं में सरोजिनी नायडू का दृष्टिकोण रोमानी है कला प्री राफाएल (Pre-Raphaelite) स्कूल की है जिसमें राफा संवीत पर विशेष धन दिया जाता है। घंघेरी न समझने वाल भी उनके रास्ते मयोन का कुछ धर्म से मयन है। वास्तव में उठने जाने कीन ने कुछ पंक्तियाँ गुना

"Lightly O lightly we bear her along
She sways like a flower in the wind of our song
She skims like a bird on the foam of a stream
She floats like a laugh from the lips of a dream"

कल्पना और मधुर-ध्वनियों का ताना-बाना था यहाँ गुना गुना है वह सरोजिनी देवी की कविताओं की विशेषता है। बहुत और प्रेम उनकी कविता के ऐसे विषय हैं जिनपर उन्होंने कई कविताएँ लिखी हैं। बसंत प्रकृति वर्णन से उठकर देश और मानवता के नवजागरण तक जाता है उसी प्रकार प्रेम मानवी संबंधों से ऊपर उठकर कहीं-कहीं रहस्यवादी बन गया है।

देश का उद्बोधन करनेवाली भी उनकी कई रचनाएँ हैं और इनमें उनका स्वर जोरवर्ती हो उठा है

"Thy future calls thee with a manifold sound,
To crescent honours, splendours victories vast;
Waken, O slumbering Mother and be crowood,
Who once wert Emptress of the sovereign Past."

'अविष्य धरने बहुकंठों से तुझे पुकार रहा है। वह भी-नपरा और विजय से तेरा सम्बोधन करना चाहता है। तू निद्रा त्यागकर उठ और अपना ताज पहन। क्या तुझे याद नहीं कि तू पृथ्वी की महारानी थी।'

ऐसी उद्बोधनकारी कविताओं में Awake 'जागो' शीर्षक कविता है जो १९१२ की वादेल में पढ़ी गई थी और मुहम्मद अली जिन्ना को समर्पित हुई थी—कविता के अंत में सब धर्मों के लोग हिन्दू मुसलमान ईसाई, पारसी तथा अन्य समाजसभ की भारतमाता को अपनी-अपनी सेवाएँ समर्पित करते हैं।

ऊपर उनकी कविताओं को पढ़ते हुए मेरा ध्यान 'द लोटस' मनेट पर गया जो महारानी गांधी पर है जिनमें उन्होंने महारानी गांधी की तुलना उस रहस्यमय कमल से की है जिसके पारों और साज-झा-साज धीरे-धीरे एकत्र हो गए हैं।

उनकी कविताएँ अधिक नहीं हैं। उनके जीवन-काल में उनके तीन संग्रह विज्ञापन हैं। उनका मकमल सेप्टर्ड फ्लूट (Sceptred Flute) के नाम से कर दिया गया है। मेरी बड़ी इच्छा है कि कोई सरोजिनी नामझ की समस्त रचनाओं का अनुवाद हिंदी में करे। मैंने स्वयं उनकी कई कविताओं का अनुवाद किया था पर मैं कहीं मेरे कागद-पत्तों में नहीं पड़ी हूँ। एकाद मैंने उन्हें गुनाई भी की थी और उन्हें पसंद आई थी। सरोजिनी नामझ की कविताओं में भारत के नवजागरण की प्रविधनियाँ आज भी गूँग गुनाई देती हैं।

फरवरी १९५६]

बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन एण सस्मरण

मुझे यह खानकर बड़ी प्रसन्नता है कि राष्ट्र धीरे राष्ट्रधारा के बयोवृद्ध महक बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन के सम्मान में एक अभिनन्दन-ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है। इसाहाबाद नगर का निवासी होने के नाते इसाहाबाद-निवासी अग्र्य बाबूजी से अपना कुछ अधिक निकटता का गला मानकर, गौरवान्वित होने का मुझे अधिकार है।

“माता हैं अपनी मय-भाषा

नीक इसाहाबाद नगर में।

कई महीनों से यह मुझ रहा है कि बाबूजी बहुत बीमार हैं। अस्वस्थता के कारण उन्होंने राज्यसभा से भी इस्तीफा दे दिया है। कई बार मन में इच्छा है कि इसाहाबाद जाकर उनके दयन कर पाऊँ, परन्तु दिल्ली के व्यस्त जीवन से इसके लिए समय निकालना अर्न्तव्य-सा लगता है। ऐसी परिस्थिति में अभिनन्दन-ग्रन्थ के आयोजकों का मैं बड़ा आभारी हूँ कि उन्होंने मुझे धूप के लिए कुछ मिलाने के लिए निमन्त्रित किया और हम प्रकार मुझे यह अवसर दिया कि दूर से ही सही मैं उनकी मया में अपने भावों की यह व्यथावति उल्लिखित कर सकूँ। एक बात का मुझे गेद भी है यदि बाबूजी अभिनन्दन-ग्रन्थ के योग्य अवकाश अधिकारी व सो भाज के बहुत पहले हो चुकें व धीरे इस कद में उनका सम्मान भाज ने बहुत पहले किया जाना चाहिए था। हम कामों को समय से न करने के धारी हो गए हैं। अममय किए कामों का यह एक घट जाता है। यों बाबूजी अपने घरों में स्वभावमग्न हैं और किसी भी समय उनका सम्मान करके हम स्वयं गौरवान्वित होंगे। भाज ता बिरोधर हमारा उनका सम्मान करना उनका सम्मान न करी अधिक हमारा उनके त्याग अभिमान एवं सेवा के प्रति कृतज्ञता प्राप्त ही है।

भाज के पुनर्जागरण की सेवा में घनेरानेक सादोहन उँ परंतु उनमें से

प्रमुख वे—एक राष्ट्र को स्वतंत्र करने का आंदोलन और दूसरा राष्ट्र को एक
 भाषा से सुसंनद्ध करने का आंदोलन। वस्तुतः कामक्रम में यह दूसरा
 आंदोलन पहल उठा लेता कि स्वाभाविक भी था और मैं कहना चाहूँ कि
 यह वहीं से प्रारंभ व्यापक और महत्त्वपूर्ण भी था। स्वतंत्रता मिलने के
 पक्षपात स्वतंत्रता का आंदोलन समाप्त हो गया पर राष्ट्रभाषा का आंदोलन
 आज भी चल रहा है और उन समय तक चलता रहा जब तक कि यह समझ
 पैदा एक भाषा के मुक्त मूल में बाध नहीं हो जाता। हम देख ली विविधता
 मर्यादा से इतिहास के चरमपंक्तों में नहीं हुई एकमुखाता और समता का विना
 भीतर कर रही है। बाहरी रज्जुवालों और मूलभाषों में जकड़कर यह लगता
 नहीं साईं या सचरी से तो किसी आंतरिक सुख में ही जाना होना—और
 वह मूल एक भाषा का है—हिंदी के लिए हिंदी का है। जब तक यह देश अपनी
 सामिक और स्वाभाविक एकता नहीं प्राप्त कर लेता तब तक इसकी स्वतंत्रता
 अधूरी है इसकी स्वतंत्रता सत्ता प्रत्यक्ष। इसीलिए आज क्यों मैं थोड़ा टशन जो
 परम आस्था और हठता के स्वरों में यह उद्घोषणा करते आ रहे हैं कि
 राष्ट्रीयता ही हिंदी और हिंदी ही राष्ट्रीयता है। इन कथों के उद्देश और
 उद्देश को मैं समझना अपनी बुद्धि की परीक्षाएँ हूँ इसकी समीक्षा
 और दृष्टि की समीक्षा का ही गुरुत्व देना है। आज जब उनके हम विद्वत्-विद्वत्
 प्रतिष्ठापित स्वर के विरुद्ध कुछ लोगों ने काम में उबलने दे ली है और कुछ ने
 प्रतिवादी स्वरों में बोसता प्रारंभ कर दिया है तब हमारा उन्हें स्मरण करना
 उनका सम्मान करना उनका समित्व करना उनके प्रति अपनी बुद्धिमान
 व्यक्त करना हमारा एक बार फिर उनके मंदिर की मूर्त्ति को स्वीकार करना
 और उनके अनुसंग कुछ प्रभावकारी करने के लिए हठप्रतिज्ञ और कर्मिष्ट जाना
 है। केवल एही रूप में यह समित्व-संबंध किसी चीज में उनके नेतृत्व का विनय
 बन जाता है अथवा वे निरा-श्रुति मान-अपमान का बहुत ऊपर उठ
 कुछ है।

ये विचारों जीवन में ही के नगर के एक प्रतिष्ठित बर्षीय के मन में
 विस्फोट हो चुके थे और हमारे सामुदायिक जीवन में हिंदी को पुनर्स्थापित करने
 का कार्य उन्होंने प्रारंभ कर दिया था। हिन्दी-प्रेमियों को हिन्दी पुस्तकें मात्र
 सुनने ही इनके लिए अपने एक पत्नी मित्र का प्रेरित कर उन्होंने 'साहित्य प्रयत्न'

की स्थापना कराई थी जो शाहजहाँ में भीक में उनकी बैठक के सामने बनी तक प्रयाग में हिंदी पुस्तकों की एक यात्रा बुझान थी। चाक्सवर्थ की सर्वप्रसिद्ध पुस्तकों की बुझान पर यह सिद्धकर देना है कि यात्रा कोई भी पुस्तक किसी भी घर तक दुकान में बैठकर पढ़ सकते हैं। 'साहित्य मन्त्र' में यह बिरादर देना तो नहीं था पर परपरा यही थी। पुस्तक खरीदने के लिए रसों के प्रभाव में मैं न जाने किन्तु किताबें वहाँ बैठकर पढ़ी थी और मेरी तरह के नहीं बहुत लोग धारा करते थे। टहन की को धारा पानी बार वही देण का सीमाय प्राप्त हुआ था। लोगों को किताबें देखते-सुने देव उनकी धर्मों में जो प्रशानता कम उठी थी वहाँ की धारा से धारा तक मेरी स्मृति का कोई कोना अभी-कभी धक्का उठता है।

टहन की को पानी बार बुझने की स्मृति भी विद्यार्थी जीवन की है। स्कूल के किसी कमरे में उन्हें बुझाया गया था। उन्हें और स्वाधीन करने पर धारा का एक ही मंत्र में बुझने की कुछ धर्मों-भी यात्रा मुझे बनी हुई है। दोनों ही हिंदी की महत्ता पर बोले थे—एक बुद्धि एक सम्पत्ति पर हिंदी के विषय पर देना एकमत। तब से कई बार उन्हें बुझने का धक्का बिना पर प्रसंग कोई हो हिंदी के प्रचार हिंदी की महत्ता की वहाँ उनके ध्यायान में बढ़ी न करी में प्रेम-दिलकर था ही जाती थी।

हिंदी के उच्चकोटि के साहित्य का पढ़न-भाटन विधिवत हो तक इसके लिए उन्होंने प्रयाग में हिंदी विद्यापीठ की स्थापना की थी। हने वह न बुझना चाहिए कि यह वह समय का जब हिंदी के विद्वानों-विद्यार्थियों में प्रचार पाने की बात का दृढ़ उमर मरौतो में उठे धर्मों की भी धारा न थी वह इतरकोटिपट में भी नहीं बढ़ा जाती थी उसका गहिम वचन हाईस्कूल तक पढ़ाने योग्य लक्ष्य था।

हीक गन्ती मुझे यात्रा की पर विद्यापीठ का उद्घाटनोत्सव वीरभक्त के विद्यामंदिर हाई स्कूल के धारा में मण्डप हुआ था। धक्का स्कूल सड़क में था जुवा है। उद्घाटन करने के लिए गायी न बाबू मधवानराम का बुझाया गया था। धारा यह मीनकर मैं बड़े धोरन का धनुष्य करना है कि मैं उन उमर में मीनर था। हम धानी सस्त्रि में विनये धर्मविधि हो गा कि 'वीर' उनके ऐतिहासिक धर्म का धर्म देवता वह पीठ मधुवन के दिग्गज वीर में रीढ़

होती है। उस दिन टंडन जी ने धीरे भयभानवास जी ने क्या-क्या कहा इसकी तो मुझे याद नहीं पर उस 'शीठ' दण्ड की उनका विमल व्याख्या करनी पड़ी थी और इस प्रसंग में कभी समुपस्थित बनता हूँ तो भी थी। टंडन जी ने हिंसा पर बने नाक-विमोर होकर व्याख्यान दिया था बने नाक-विमोर बने कबल कुछ मर्तों को भयान् का मुण्णवान करने समय दखा है। जहाँ तक मुझे याद है टंडन जी ने कभी कबिता तो नहीं की परंतु उस दिन उनका नाकण वाक्य चित्त हो था। कभी-कभी मैं साधना हूँ कि हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए टंडन जी ने सक्रिय रूप से जितना किया उतना धायद हो किशो दूसरे ने किया हा पर उनम प्रणिता भी कि हम कुछ सज्जनारमक और स्वाधीन मपति भी दे जाय। पर टंडन जी के मर्त्यमय जीवन ने धायद वह शानि और सुविधा कभी नहीं दी जो स्वयं के लिए धायदक होती है। ऐसी प्रतियाध को दखकर इस कथन को मानना का बोध होता है कि जीवन माहित्य से बड़ा है। टंडन जी ने कबिता न लिखी हो पर उनका जीवन स्वयं एक वाक्य रहा है टंडन जी ने निबन न निबा हा पर उनका जीवन स्वयं निबन-मर्त्यमय रहा है।

उनके हिंदी नेत्र का एक उत्कट उदाहरण मुझे उनकी कन्या कुमारी के विवाह के समय देखने को मिला। हमारे मस्कारों में ससुल सब भी प्रतिप्लिय है हमारे मवात्र म आरखी धाई उर्बु धाई, धवेकी धाई पर जीवन के एक क्षेत्र ने हमारे पुरोहितमहाशय सम्पूर्ण की सत्ता को प्रमुख बनाए रखे। टंडन जी के मन में हिंदी का जो स्वप्न है वह नर्मव्यापक है, वे भारतीय जीवन के किसी भी क्षेत्र का हिंदी की परिधि से बाहर नहीं समझ सकते—बाह्य वह पिया का हो जाने ग्याद का बाह्य राजनीति का बाह्य धम का बाह्य नर्मव्यापक का। उन्होंने यह निगाय दिया कि विवाह में जो भी मवात्रि पड़ जाये है उनका हिंदी में अनुवाद कर दिया जाए और संस्कार के समय व हिंदी में ही पड़ जाए। हजों पदियों को अपने घर पर बिठाकर उन्होंने सब मस्कार मंत्रों का हिंदी में अनुवाद कर दिया। उनका विश्वास है कि जीवन के छोटे-म-छोटे क्षेत्र से लेकर बड़े-स-बड़े क्षेत्र में जहाँ बासी की धायदकना पड़ती है हिंदी अपना वाचित्य निमाने में समर्थ है या समर्थ बनाई जा सकती है। टंडन जी समूर्ण सिद्धांत बनाने और जगदी घोषणा करने में विश्वास नहीं रखते। जा कुछ करने योग्य है, निज किया

जाणा चाहिए कि उसे करके दिखाता है। वह सम्यक रूप में न हो सके, उतथा उपहास किया जाए, उसका विरोध किया जाए, इसकी उसको परवाह नहीं है। पृथ्वी पर आगता है बीड़ना है तो बल्का इगकी प्रतीक्षा नहीं करेगा कि जब तक उसके पाँव मजबूत न हो जाएँ तब तक वह इतरम नहीं उठाएगा। वह अपने अस्मिन् निर्बल समयवाले करन्नों ने भी जेना मित्रेया फिर उठेगा धावे बनेगा। जो लोग इस प्रतीक्षा में हैं कि जब द्विती मर्मर्ष हो जाएगी तब जो जीवन के विविध क्षेत्रों में आगते के द्विती को पशु यमाण रखने का पदपथ रख रहे हैं।

महाराजा गांधी के १९२०-२१ के समद्वयोप आंदोलन में जब कि अपनी अमी-जमान बकासल छोड़कर बुर पड़े तो किनीको आरक्षण नहीं हुआ। आरक्षण उनके ऐसा न करने पर होता। उनका परिवार बड़ा और कुटुम्बी कच्ची थी और बाबू जी के त्याग के कारण घर के छोटे-बड़े सबको जो कष्ट उठाना पड़ा उसमें न जाने कितने परिवारों को मज्ज का पाठ पढ़ाया महाराज बिना ऊपर उठाया। मेरा ऐसा ध्यान है कि बहुत बड़े लोगों द्वारा किए गए त्याग-बलिदान लोगों को महज अनुकरणीय नहीं होते। महज-परिवार का त्याग बहुत बड़ा था उसमें प्रेरणा भी वरंतु उगकी मयमना उनके उदाहरण को अनुकरणीय बनाने में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित करती थी। टहन जी का त्याग एक मध्य वर्ग के व्यक्ति का त्याग था उसने प्रयाग के मध्यवर्गीय परिवारों के लिए त्याग और बलिदान को महज-माध्य मिद किया। स्वतंत्रता के मर्मर्ष के समय में देश के लिए राजा उठानेवाले त्याग करनेवाले नाम करनेवाले नागरिकों के लिए टहन जी सबसे निचट और परिचित प्रतीक थे सब उन्हीं नाम में देखते थे नाम में जानते थे उनके घर पर प्यार नहीं था उनके दरबार में हारपाय नहीं थे।

१९३० के गान्धाजी आंदोलन में मय० ए० प्रीतिपण करने के बाद घेने की मुक्तिमित्री छोड़ दी थी। डेढ़-दो वर्ष बाद जब आंदोलन की गर्मी माल हुई तो प्रीतिपण की बठोर बाल्मिकिना में पूरना आरंभ किया। 'गान्धाजी' संबर्द्धों के आधिपत्य में देशी गांधी के हाथ में आया था उन्हीं घेने निजा की पेशन बंद कर दी। बीमाध्य मे केरे गान्धाजी की बी० ए० करने के बाद ही धेक की आगते मिस पर। घेने गान्धाजी के प्रथम गद्या पिरेगिंग गान्धाजी विपुल गान्धाजीपरी बाल्मिकिनी की दुनिया में गान्धाजी अपने घर की देगा तो बाल्मिकिनी

उत्तर। हम धारमियों का परिवार, जो उनमें से बीमारियों के चिकार छोटी
 बहुत व्याहने को एक भारी ऊर्ध्व बुकाने को और एक धारमी के कंधे पर
 साय भार। दूसरों एक-दो में करता था पर मैंने निश्चय किया कि कोई
 निमनित नौकरी करके मैं छोटे माई का हाथ बटाऊँगा। काम मैं ऐसा चाहता
 था जिसमें वेष्ट के लिए कुछ करने का अवसर भी रहे और इतना बेतन भी
 मिले कि घर का काम-काज चलता रहे। उन दिनों बाबूजी मासा लाकपुत राय
 द्वारा स्थापित 'सर्वेदम धाफ इडिया सोसाइटी' के चयरमैन थे। उसमें कुछ ऐसी
 व्यवस्था थी कि मास्य लोगों को पचास रुपया मासिक सादरपन (मानरेरियम)
 दिया जाता था और उनमें लाबीजन बेससेवा का वत लिया जाता था। टंडन
 जी के पुत्र भी कुरप्रचार टंडन (इस समय बिकोरेवा कामेज धामिवर में
 हिंदी-बिमाय के अध्यक्ष) भी ए० में मेरे सहपाठी थे। उनमें परामर्श करके मैंने
 सोसाइटी की सरसयता के लिए एक प्रार्थनापत्र दे दिया। बाबूजी ने मुझे बुलाया
 उन्होंने मेरी धार्मिकों में धार्मिकों टासी और न जाने क्या उन्होंने उनमें देखा कि
 मुझे मानाइटों में लेने में इन्कार कर दिया। मुझे भी ए० म प्रथम धेणी मिसी
 की मैंने अपनी पढ़ाई छाड़ी थी सरकारी छात्रवृत्ति छोड़ी थी और उन दिनों
 के वालों में देश के लिए कुछ काम भी किया था अपने पुत्र के द्वारा उन्हें मेरी
 पारिवारिक स्थिति का पता था पर उन्होंने निममतापूर्वक मुझसे कहा "मुझे
 अपना है तुम्हारा क्षेत्र यह नहीं तुम्हें अपनी पढ़ाई पूरी करके खिता और
 साहित्य के क्षेत्र में अपना विकास करना चाहिए।" मुझे बड़ी निराशा हुई, टंडन
 जी के लिए हताश मन मेरे मन में कुछ कुशासनार्थ भी उठी पर साथ मैं जानता
 हूँ कि उन समय मुझमें अधिक उन्होंने मुझे पहचाना था और यह मानता हूँ कि
 उन्होंने सोसाइटी में न लकर मेरे साथ उपकार ही किया था।
 इसके बोझे ही समय बाद मैं 'यमुनाला' की कबाइरों में घूट पड़ा। ऐसे
 कई समय मुझे मिले जब उनके सम्मुख या उनके समापतिर में मुझे कविता
 सुनाने का भीमाव्य प्राप्त हुआ। उन्होंने हर बार मेरी धार्मिकों में अपनी धार्मिकों
 शर्मा और जैसे मुझे उस पहली मेट की याद बिलाई मैंने तुममें जो देखा था
 वह धन नहीं था तुम राजनीति के जगत के लिए नहीं थे कास्य के उपवन
 के लिए थे।
 मेरी तरह टंडन जी ने न जाने कितने नवयुवकों को जीवन की ठीक दिशा

ही होमी जो यहि धात्र मेरे समान मयनी-मुकर हो सकते तो अपनी-अपनी कृतज्ञता स्थापित करते । महान धारमाधों का जान बोगों दिवाधों में होता है वे देस-समाज को एक व्यापक जान ता व ही जाते हैं व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन को भी कुछ समूह्य धन्य धविस्मरणीय दे जाते हैं । सूर्य समुद्र को जाग्रत-मान करता है, धोषविषु को भी जमका देता है । इन सीमित बरदानों की चर्चा इतिहास के पृष्ठों में नहीं होती पर समष्टि के जीवन में इनकी महत्ता बर नहीं होती । टंकन जी हमारे देस की महान धारमाधों में हैं उन्होंने अपने जीवन कर्म विचार से व्यापक रूप में देस को धीरे सीमित रूप में धनेकानैक व्यक्तियों को प्रभावित किया है । उनकी साधना उनके जीवनकाल में ही वस्तुविशुद्धि हुई है । हमारी मयबाग से प्रार्थना है कि अजेय जागूनी स्वस्थ होकर अभी बहुत दिनों तक हमारे बीच वर्तमान रहें धीरे अपनी साधना को धन्यवती होते भी देखें । हम उनको यह विद्वान् दिलाया चाहते हैं कि दिन 'राष्ट्रीयता का स्वप्न उन्होंने देना था उसे भाग्य करने का हम मनुष्य प्रयत्न करने रहेंगे ।

[१९९]

अमरनाथ झा (रेडियो वार्ता)

इन छायाश्री के पहले दो दशकों में प्रयाग के मिश्रित-बीसित नागरिकों में जिनकी कर्षा बड़े घाबर-मान से हुषा करती थी वे वे पंडित नरनमोहन मानवीर पंडित मोतीलाल नेहरू, सर तेजबहादुर सप्रू और महामहोपाध्याय पंडित संनानाथ झा—मानवीर भी और नेहरू साहब का नाम बेच-बचा के क्षेत्र में सप्रू साहब का न्याय के क्षेत्र में और झा महोदय का धिया के क्षेत्र में। नयनान भी म्योर सेंट्रल कासेज में संस्कृत-भाषार्थ के पर सं उन्नति करके प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पर पर पहुँचि वे और उन्नाते प्राय ६ वर्षों तक विश्वविद्यालय की बाबडोर नैनालकर १९३२ में अवकाश ग्रहण किया था।

अमरनाथ झा पंडित संनानाथ झा के त्रितीय पुत्र थ। उनका जन्म १८६७ में हुषा और कचपन में ही अपने पिता के माथ बरमबा से प्रयाग चले गए थे। उनकी धिया कर्नलबंन स्त्रूस बर्नमेट हार्ड स्त्रूस म्योर सेंट्रल कासेज में हुई। उनके स्वाध्याय और उनकी बुद्धि की प्रकृता से अविकारी-वर्ष इतने प्रभावित थे कि वह वे स्वयं एम० ए० में पढ़ते थे तभी उन्नाते बी० ए० को पढ़ाने का काम उन्हें दे रक्का था। धाये बलकर वे प्रयाग विश्वविद्यालय के संप्रधी विभाय के अध्यक्ष हुए और १९३८ में उपकुलपति क वह के निध हुये गए। अपने पूज्य पिता के मवान ६ वर्षों तक वे उस पर पर रहे, पत्रपात्र एक वर्ष के निध काशी विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे, ६ वर्ष उत्तर प्रदेश पब्लिक नर्सिग कमीशन क अध्यक्ष और २ वर्ष बिहार पब्लिक नर्सिग कमीशन के अध्यक्ष। उनका देहावन १९४५ में गटना में हुषा।

प्रयाग में उनको बड़ा प्रेम था। काशी जाने के पूर्व व धक्कर कहते थे कि मैं जब से प्रयाग आया तब से अब तक कभी भी एक ताब ६ नहीं ले सका

प्रयाग के बाहर नहीं रहा। और यह ६ मास की अवधि भी केवल एक बार पहुँची थी जब के इंग्लैंड गए थे। उन्होंने प्रयाग नगर और प्रयाग विश्वविद्यालय की परम्परा को पूरी तरह पहचान लिया था और उसके ऊपर अपनी पूरी छाप भी छोड़ी थी।

अब साहब सैरा संपर्क उस समय हुआ जब मैं एम० ए० में पहुँचा। उनको विज्ञता और कुटिल की प्रशंसा की बर्षा इतनी मुन चुका था कि बहुत जल्द इन्हें उनके पास पहुँचा। वे एम० ए० का सेमिनार सिपा करते थे जिसमें वे हर विद्यार्थी को असम-असम विषय पर लेख लिखने को दिया करते थे। प्रतिवर्षिकी में उनका एक अवकाश कमरा था दोबारे कक्षावाच्य असमार्थियों के हकी टमाटस किताबों से भरी मेज पर भी नई-से-नई पुस्तकें पत्रिकाएँ सामने कुर्सी पर गुद-भँधीर मुद्रा में अब साहब बका भारी धिर, ज्ञान के भंडार का प्रतीक पड़ी-बड़ी धीप जिससे किसी का भी असमान दिया नहीं रह सकता। स्वाम स ६ महीने उन्हें सोचना नहीं पड़ा। पट-पट हर एक को निर्णय का गद-गद विषय दे दिया और फिर हर एक को सहायक पुस्तकों की सूची बता दी—पुस्तक का नाम लेखक का नाम प्रकाशक का नाम पत्रिका का नाम है तो उनका मास-वर्ष। विषयों पर जो कुछ कहना था कहाने ही कहा किसी का कुछ कोलमे-बुद्धन की हिम्मत नहीं हुई। क्लास में निकले हैं तो जैसे किसी ने कानों में कहा है कि हरजान कि साब बपस में बैठना है तो बिहमल करनी पड़गी।

उन दिनों उनके लक्ष्मण मूरत सेवक भी कभी-कभी होने थे। वे लकड़ की मुई से थोड़ा बल पर पकड़ते उनके भाते ही सम्पादक छप जाता उनके व्याख्यान के पीछे मधीर अध्ययन हुआ। विद्यार्थी की स्पष्टता होती कम होता मतुम होता। उनका व्याख्यान में किसी क किसी तरह की गड़बड़ी बचाने की बलना भी नहीं थी या मानी थी। उनको धीमे गवकी देगती रहनी थी और गवकी अपनी ध्वनि से प्रभावित करनी थी। वे अपने व्यक्तित्व और अपने ज्ञान ज्ञान स दर्शन थे।

उनका विद्वान मित्रने मुझे का धरमर मुझे उन दिनों मिला जब के विद्वान विद्यालय में उपस्थित हो गए थे और मैं संघेरी विभाग में नियुक्त था। जब तक मैंने वेबल उन्हें विद्यार्थी की दृष्टि में देगा था दर्ज में या सेवक हाव

में। जब यहा-कदा घर पर भी उनके दर्शन करने का सुयोग मिला। एक बार मैं बचपन एक मास उनके मसूरी के लिनबुड काटेज में उनके साथ ठहरा था। और इस प्रकार उनकी दिनचर्या और उनकी कार्यविधि से भी परिचय प्राप्त कर सका था।

मैं तो उनका विद्येय विषय अग्रजी साहित्य था पर उनकी रुचि में विविधता थी—ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में उनका बोझ-बहुत दसल था। अंग्रेजी के माध्यम से वे विभिन्न योरोपीय साहित्य से भी परिचित थे। मापार्स के कई बातें थे। सस्कृत बेंगला मैथिली हिंदी और उर्दू। इनमें भी जो उष्णकोटि का साहित्य है, वह उन्होंने पढ़ रखा था। सस्कृत के कितने ही दसोक उनकी ज्ञान पर वे जो प्रमाणानुसार वे मुना बैठ थे। रबीन्द्रनाथ ठाकुर की संपूर्ण रचना रचनाबनी उनकी मेज पर रखी रहती थी। मैथिली उनकी मातृभाषा ही थी। उनके हिंदी लेखों का एक संग्रह भी छप चुका है। उर्दू कवियों पर उनके लेख प्रायः पत्रों में निकला करते थे। जब उनक ऐसे लेखों का नमूना 'उर्दू पोएट्स ऐंड पाएट्री' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। अंग्रेजी में 'रोक्स-पीरियल कामिटी' के नाम से उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। वे बिहारी के लेखों का अंग्रेजी अनुवाद भी कर रहे थे मुझे पता नहीं कि उनक वैवाहिक जीवन परभाव उनकी पाठ्यविधियों का क्या हुआ।

जबने घर पर उनका अधिक समय जवन रामकापी पुस्तकालय में बीता। उस पुस्तकालय में कबल पुस्तकें ही नहीं थीं बनेक चित्रकारों के चित्रों और कलाकारों की कला-कृतियों से वह सुसज्जित था। चाय ही कोई प्रसिद्ध पत्र पत्रिका ऐसी हो जो उनके यहाँ न पाती हो। पुस्तकें तो वे बराबर पढ़ने ही रहते व पत्र-पत्रिकाओं में भी कुछ धन्यता उनकी नजर से न छुटता था। यह सभी मामली उनके मित्रों और विद्यार्थियों के लिए मुसी थी। लोग बराबर उनक पुस्तकालय में किताबें न जाते थे। मैंने जब 'जयाम की मधुमाता' की मुद्रित लिखनी चाही तो प्रयाग के गुरु पुस्तकालयों में अधिक मायगी उन विषय पर मुझे म्हा माहब के पुस्तकालय में मिली।

इस प्रकार म्हा माहब एक सुसज्जित व्यक्ति के प्रतीक बन गए थे। मुद्रितगिरी या नगर में किसी भी सांस्कृतिक अवसर या पर्व पर उनक व्याख्यान सारपत्रित होकर जानमरदायक होते थे।

कला और संस्कृति के सब प्रकार के धायोबनों में वे रुचि लेते थे। बिज प्रदर्शनी संगीत-सम्मेलन कवि-सम्मेलन माट्य-ग्रदशन सभी को उनका सहयोग मिलता था। कवि-सम्मेलन और मुद्याये उनके घर पर बराबर हुआ करते थे। अपने समकालीन उर्दू और हिंदी के प्रायः सभी कवियों से उनका व्यक्तिगत सम्पर्क था।

उनके कार्य के क्षेत्र बहुत विस्तृत और विविध थे। छोटी-सी बाता में सब पर प्रकाश डालना संभव नहीं। प्रमुख रूप में वे प्रयाग विदेशविद्यालय के उप-पुनर्पति के रूप में स्मरणीय किए जाएंगे। उनका द्वार उनके प्रत्येक विद्यार्थी के लिए खुला रहता था। वे जहाँ तक संभव हुआ सकता था सबकी बात सुनते थे सबको उचित सलाह देते थे। न जाने कितने विद्यार्थियों के जीवन को उन्होंने बनाया था। एक बार यूनिवर्सिटी छोड़कर जो मैं फिर यूनिवर्सिटी में आया वह उन्हीं की प्रेरणा का प्रभाव था। विद्यार्थियों से संपर्क रखना उनको इतना प्रिय था कि बाइस बसवार हो जाने के बाद भी वे इतना समय निकाल लेते थे कि बी० ए० के विद्यार्थियों का एक भवनारम्भ करते थे। यूनिवर्सिटी छोड़ने के बाद भी वे अपने विद्यार्थियों की सोच-सबर रखते थे। जब कभी यात्रा पर जाते विभिन्न स्टेजनों पर अपने विद्यार्थियों को बुलवा देकर बुलाते और उनसे मिलते।

उनकी पत्नी का बड़ाबगान उनके जीवन-काम में ही हो गया था। उनका अपना कोई पारिवारिक जीवन नहीं था। उनका परिवार था उनका प्रेमियों का विद्यार्थियों का। सुबह और शाम के कई घंटे लोगों से मिलने-मिलाने के लिए होते थे। यूनिवर्सिटी से अलग होने पर भी उनके दरबार में लोग बराबर आते रहते थे।

साक्षरपणा है कि उनको एक विस्तृत जीवनही मिला था। सभी बहुत से लोग और बहुत-सी गानगी भिन्न-मननी है जो इन दिनों में सहायक हो सके।

जब-जब उत्तर भारत के विद्या और विद्या-विद्यार्थी भी जहाँ होनी चाहना था वो धार में सम्मिलित किया जाणा।

बनगरी ३२]

निम्न नहीं जान पड़ा—बैठखीबी से बसा संन रास्ते बाजार का सार-जुम। सौटते समय हुने मबर को देखने का अधिक समय मिला। मगर के बाहर खुली जगहें हैं कुछ पक्की इमारतें और पक्की भंडिर हैं। सबसे मध्य भवन भूतपूर्व राजाओं का राजमहल है। कस्मीर जिस प्राकृतिक सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध है, उसकी आसर जम्मू में भी यत्र-तत्र देखी जा सकती है।

कस्मीर सरकार के अधिकारी हुने जम्मू में मिथ गए। हुने जम्मू से भीमवर भिजने का इतनाम इस प्रकार था। शाम को जम्मू से टुर्के जाती है जिनमें सामान बर्बर जाता है। वे टुर्के बहुत तेज मही जाती। रास्ते में दस्तों को बेर-बेर तक हैं और इस प्रकार में समय हो सी भील का सफर बीबीस-पच्चीस घंटे में से करती है। हमारे रस में बीस विद्यार्थी थे। हम दो-दो करके इन टुर्क में आम की सीट पर बिठा दिए गए। हम सोम कोई सात घंटे खाना हुए थे। इलाहाबाद से दिल्ली और दिल्ली से पठानकोट तक हम बीस के बीस एक ही दिवस में आए थे। पठानकोट से जम्मू तक भी एक ही रस में। शाम में बातचीत हुसी-मजाक में जो आनंद आ रहा था वह सहमा खत्म हो गया। अथ हम सब दो-दो साथ रहे गए और शाम में दो अपरिचित एक दुआबर और एक कसीनर जिन्हें हमें माना प्रियकर में था क्योंकि जो उनको मबारी न जान की मनाहा है फिर भी न जारी-छिने मबारी न जाते हैं और कुछ रूप बना लत हैं।

पहला पड़ाव कुछ नामक स्थान पर हुआ। यहाँ हम सोम समय ११ बजे रात पहुँचे। बसा के धड़े पर ही एक छोटा-सा हाटल है। यही हमने खाना खाया और सो-नीन घंटे आराम किया। मुबह बार बजे बमें फिर चल पड़ी। मुहय पड़ रहा था और हमारी बस बेबराह के बूझों में हाकर मुबर रही थी—धीर-धीरे, मँभस-मँभस।

और पंजाब हमने समय ६ बजे गांधी को पार किया। बहुत भीषा और ऊँचा पहाड़ है। पाँच-साठ समानांतर गड़क एक-दूसरे के ऊपर लगाई पड़ती है। कोई बस मोच है कोई बीच में कोई ऊपर। ऊँचाई पर पहुँचकर एक मुरय पार करनी पड़ती है और इसके पार करने ही हम बस्मार की पाछे में पहुँच जाते हैं। मुरय के अघकार में पाड़ी बेर रहने के बाद जो सहमा चौड़ी पाटी और दूर पर ऊँच पहाड़ों का दृश्य सामने आता है वह जम्बी नदी मुनामा जा सकता है।

कश्मीर यात्रा एक सस्मरण

(रेडिया बार्ता)

कश्मीर भारत का मधुवन है पृथ्वी का स्वर्ग है प्रकृति के श्रुमार की पिटारी है प्रादि-प्रादि कवित्वपूरुषों का कश्मीर के छवप में ही सङ्कलन से सुन चुका था। पर वहुती बार कश्मीर देखने का सुयोग मिला मुझे १९६६ में प्रभात कपनी ६२ वर्ष की अवस्था में। मेरा जन्म छहर में हुआ गमियों में मैं खेता हुआ मुहल्ले-टोल्ला में घूमा-फिरा। शक्ति-प्रेम के सस्कार मुझमें जाये ही नहीं। पाद नहीं पड़ता कि किसी स्थान के प्राकृतिक सौन्दर्य से आकर्षित होकर मैं उसे देखने गया हूँ। हाँ कहीं घपना मिला या प्रेमी हो तो वहाँ जाने के कुछ मतलब मेरे लिए होते हैं। या यदि कोई मिन या प्रमा हो तो उसके साथ प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थान की यात्रा भी की जा सकती है। इनके प्रभाव में कश्मीर की यात्रा मेरे लिए टमट्टी आई।

उन दिनों मैं इमाडुवाह यूनिवर्सिटी में संघेबी का अध्यापक था। कुछ दिन पहले कश्मीर के एक नेता यूनिवर्सिटी में आए थे और उन्होंने विद्यापियों के एक दल को कश्मीर आने और वहाँ का जीवन देखने के लिए आमन्त्रित किया था। इण्डोरे की छुट्टियों में विद्यापियों का एक दल हम यात्रा के लिए तैयार हुआ और बाइस बसों में सहोदय ने ठठकी देख-रेख और बसों के प्रबन्ध का कार्य मुझे सौंपा। कश्मीर सरकार की धारसे पत्र आ गया कि जम्मू से हमारे सऊर, टहलने जाने-पीने दुमाने-दिधाने की सारी जिम्मेदारी कश्मीर सरकार को होगी।

कश्मीर जाने के लिए पठानकोट निवटवन रेलवे स्टेशन है। वहाँ से जम्मू के लिए बसें मिलती हैं। तीन-चार घंटे का रास्ता है। पठानकोट से जम्मू का रास्ता विदेय धाकरदक नहीं। सड़क भर घण्टों है। जिस समय हम लोय जम्मू पहुँचे छप्पा हो गई थी। बाहर से देखने से मपर भारत के ग्रम मयों से

मिल नहीं जात पड़ा—बतरतीबी से बसा, तंग रास्ते बाजार का छोटा-मूठ।
 बीटते समय हमें नगर को देखने का अधिक समय मिला। नगर के बाहर घुसी
 भयहूँ ॥ कुछ धन्धी हमारे घीर धन्धे भरि हैं। सबसे भय बदन मुठपूर
 राजाओं का राजमहल है। कमीर जिस प्राकृतिक शौच के लिए प्रसिद्ध है
 उठकी आनर जम्मु में भी यत्र-तत्र देवी जा सकती है।

कमीर सरकार के अधिकारी हमें जम्मु में मिल गए। हमें जम्मु से धीनकर
 नेबने का इंतजाम इस प्रकार था। शाम को जम्मु से टूटें जाती हैं जिनमें
 सामान बगरह जाता है। ये टूटें बहुत तेज नहीं जातीं। रास्ते में कभी भी
 बेर-बेर तक है और इस प्रकार ये लघुमय वा सी भीम का सड़क पोजीस-पञ्चीस
 पंटे में लं करती हैं। हमारे दल में बोट बिछापी के। हम बो-बो करके इन टूटों
 में घाब की सीट पर बिठा लिए गए। हम लोग कोई सात बजे रवाना हुए थे।
 हमाहाबा से दिस्ती और बिस्ती से पठानकोट तक हम लोग के बीस एक ही
 दिक्क में था। पठानकोट से जम्मु तक भी एक ही बस में। रात्र में बातचीत
 हसी-मजाक में जो शान्ति था रहा था वह सहसा खत्म हो गया। भय हम बस
 बो-बो साब रहा यह और शाम में दो अपरिचित एक झाड़कर और एक स्त्रीनर
 जिन्हें हमें सामा प्रियकर न था क्योंकि या उनको सपारी से जाने की मनाही
 है फिर भी न बोरी-दिखे सपारी न जाते हैं और कुछ एण बना मत हैं।

पहला पड़ाव कुछ मायक स्थान पर हुआ। यहाँ हम लोग सबका ११ बजे
 रात पहुँचे। बर्मा के मकड़े पर ही एक छोटा-सा होटल है। यही हमने रात्रा
 साया और बो-लीन पंटे आगम किया। मुबह चार बजे बने फिर चल पड़ी।
 कुहण पक रहा था और हमारी बने बबलाक क बुर्पा में होकर मुजर रही थी—
 पीरे-पीरे, लोभल-लोभल।

पीर पंजाल हमने लगभग १ बजे शाम को पार किया। बहुत भीषा और
 ऊँचा पहाड़ है। पीच-पान लज्जातार मकड़े एक-दूसरे के ऊपर टिगाई पड़ती
 है। कोई बस भीष है कोई भीष न कोई ऊपर। ऊँपाई पर पहुँचकर एक मुरन
 पार करनी पड़ती है और इसके पार करते ही हम बम्पोर की घाटी में पहुँच
 जाते हैं। मुरन के बंधवार में बाड़ी देर रहने के बाद जो सहसा छोड़ी पाटी
 और नूर पर ऊँचे पहाड़ों का दृश्य सामने आता है वह जल्दी नहीं मुमासा जा
 सकता।

कर्ण (रेडियो नार्ता)

महामारुत के घोषाघों का स्मरण करते हुए कर्ण को मृतमा समझ नहीं है। वे कौरवों की घोर से सने से घोर घंठ में ध्वनि द्वारा पराजित घोर पराधामी हुए थे। कर्ण महाबलवान घोर पराक्रमी थे पर उनके नाम के साथ जो बिलेपण जुड़ा वह 'शानवीर' का था—शानवीर कर्ण। घोर नहीं शानवीरता संभवतः उनके पराक्रम का कारण भी बनी थी। उनके जन्म के साथ एक ऐसी बटना जुड़ी जो जिसके कारण उनमें एक हीन-भावना भी थी जिसे धावकर्म की भाषा में इन्फोर्मिडिटी कॉम्प्लेक्स कहिये। उनका सहृदय भी उन्हीं का दुःखी घोर उस पहलू था। उनके प्रति जो व्यवहार किया गया घोर जिस प्रकार कुछ न उन्हें पारा गया उसमें उनके प्रति म्याय किया गया धन्य नहीं इसका उत्तर देना सहज नहीं। महाभारत का ठाँक बूझा हो है। मूल बात यह है कि कर्ण कौरवों की घोर से इस कारण के धर्म की घोर से घोर भववान कृष्ण का जन्म धर्म के धम्मत्त्वान घोर संस्थापन के लिए हुआ था। उनके संकेत घोर उनकी प्रेरणा से जो हुआ उसे बेटीक कहने का तात्पर्य कौन करेगा? "बतो कृष्णस्ततो धर्मः, यतो धर्मस्ततो जयः" महाभारत की घोषणा है।

अब हम उनका जीवन वृत्तांत सुनें। कहते हैं कुंती ने अपने कोमल में दुर्वासा ऋषि की कड़ी सेवा की। ऋषि ने प्रमत्त होकर कुंती को यह वरदान दिया कि धनस्या प्राप्त होने पर जिस देवता का भी वह स्मरण करेगा उससे पुत्र प्राप्त कर सकेगी। कुंती ने कौतूहलवश मुनि के वचन की परीक्षा करने के लिए सूर्य का स्मरण किया। सूर्य देवता मनुष्य-जन्म में प्रकट हुए घोर कुंती ने उनसे गर्भ धारण किया। कुमार कुंती के धर्म से जो बालक उत्पन्न हुआ वह कर्ण था। बालक बहुत ही दिव्य था घोर जन्म से ही कुंदम घोर कवच धारण किए हुए था, जो कहते हैं धमूत से प्रकट हुआ था। इनको धारण करने के

६२

हो जो बीजा का बाजबी याम जानता है। कश्मीर कमा-काठीयरी का प्रदेश है और घग्घर घाफका कमा घ प्रेम है तो स्वाभाविक है कि य बीजों घाफक मन को मोहेंगे। व्यापारी घाँठ पहचानता है। घग्घर किसी बीज पर घाफकी ठीकत मा गई है तो वह जानता है कि घाफक यह माँसा याम स सफ़ा है। कश्मीरी बीजा को बमान की हो कमा नहीं जानत उन्हें बचने की कमा भी जानते हैं।

बीननर घाँठ में देखने की बीजों घाँसामार और निघाँठ बाँध हैं—मुकल बाँधघाँठों के बनबाए हुए बाँध जहाँ के मवानों की घर्मी घ बचन के लिए घाँसा करते थे। यमा सही में भी एक बाँध और छोटी-सी इमारत है। इसका पानी बहुत घग्घा माना जाता है।

बीननर से बाहर के स्थानों को बचन के लिए कश्मीर सरकार न हन ए

[illegible]

कर्मवीर मूँह है। पर कर्मवीरी मुँहे अधिक मंदर सब। पिकायबानां स
 लकर सेपक पीर कबियां तक बहुनों से मरा परिचय हुआ। मुँह करि रूप म
 भी जाननवाल बहौ बहुत थ कई नस्बापा म मैन कपिता पाठ किया। यहूतां
 स जिनसे परिचय हुआ या पात्र तक मरा पत्र-म्यारहार है। कर्मवीरी मित्र बनाना
 और मित्रता कायम रखना हाथों जानन है।
 जो लई हुए म कर्मवीर फिर बसा या पर म स्पष्ट कर है कर्मवीर क
 जो लई हुए म कर्मवीर फिर बसा या पर म स्पष्ट कर है कर्मवीर क

जाननेवाले वहाँ पहुँचने के लिए
 जिससे परिचय हुआ या था वह तक भरा वह अत्यंत ही
 और निश्चयता कायम रहना चाहते जानते हैं।
 हो चके हुए हैं कभी-कभी फिर क्या था पर मैं स्पष्ट कर दूँ कभी-कभी
 प्राकृतिक सौंदर्य मुझे वहाँ नहीं खींच ले गया था। मुझे खींच ले गई थी वहाँ
 के बारे में कुछ मित्रों की मूर्खता और ध्यान भी कभी भरा जाना हुआ था।
 कभी-कभी से अधिक कभी-कभी के प्रति मेरा ध्यान है मुझे वहाँ ले जाया।
 [१९२२]

कर्ण (रेडियो बार्ता)

महामारु के योद्धाओं का स्मरण करते हुए कर्ण को मूलना समझ नहीं है।
 व कौरवों की घोर से जड़े से घोर घात में ध्वज हारा पराजित और परासामी
 हुए थे। कर्ण महाबलवान और पराक्रमी थे पर उनके नाम के साथ जो विरोध
 हुआ वह 'बानवीर' का था—बानवीर कर्ण। और यही बानवीरता संभवतः उनके
 पराजय का कारण भी बनी थी। उनके जन्म के साथ एक ऐसी घटना जुड़ी जो
 जिसके कारण उनमें एक हीम-भावना भी थी जिसे धातक की भाषा में
 इनजीरियाष्टी काम्मेक्स कहते हैं। उनका गर्वकार भी उसी का दूसरा और उच्च
 पहलू था। उनके प्रति जो व्यवहार किया गया और जिस प्रकार मुँह में उन्हें
 मारा गया उसमें उनके प्रति ग्याय किया गया व्यवहार नहीं इसका उत्तर देना
 सहज नहीं। महामारु का तर्क ठीक ही है। मूल बात यह है कि कर्ण कौरवों
 की घोर से इस कारण से धर्म की धार ध और भयवान दृष्टि का जन्म
 धर्म के सम्मुखान और सस्थापन के लिए हुआ था। उनके संकट और उनकी
 प्रेरणा से जो हुआ उसे देखीक कहने का साहस कौन करेगा? "यतो ह्यस्ततो
 धर्मः यतो धर्मस्तथा जयः" महामारु की बोधना है।

यद्यपि हम उनका जीवन गुलाब मुनें। कहते हैं कृती ने अपने बीमार्य में
 दुर्वासा जपि की बड़ी सेवा की। जपि ने प्रसन्न होकर कृती का यह वरदान
 दिया कि व्यवस्था प्राप्त होने पर जिस देवता का भी वह स्मरण करेगी उससे
 पुनः प्राप्त कर सकेगी। कृती ने कौतूहलवान मुनि के वचन को परोखा करने के
 लिए मूर्ख का स्मरण किया। मूर्ख देवता यमुप्य-क्य म प्रकट हुए और कृती ने
 उनसे गर्भ धारण किया। पुमादी कृती के यम से जो बालक उत्पन्न हुआ वह
 कर्ण था। बालक बहुत ही दिव्य था और जन्म से ही कुरुज और कुरुज बारुन
 क्रिय हुए था जो कहते हैं धर्म से प्रकट हुआ था। इनको धारण करने के

कारण वह मृत्युञ्जय या और उसे मानव-हामन-देवताओं में से कोई नहीं मार सकता था। पर कुमारी अपने पुत्र को लेकर समाज के सामने कैसे जाती। उसने कर्ण को एक पिटारी में रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया।

यह पिटारी घबिराय न देखी और पकड़ सी। घबिराय कर्म से मृत या शारीर या और राजा मृतपुत्र का मित्र था। उसके कोई संतान न थी। उसने शासक को साकर अपनी पत्नी राजा को दिया जिसने बड़े माह-म्यार से उसका पालन-पोषण करना आरंभ किया। इसी कारण कर्ण का कभी कभी मृतपुत्र घबिराय भयसा सम्ये भी कहा जाता है।

सूर्य का घंटा होने के कारण कर्ण अपने तेज सही दिन-प्रतिदिन प्रोख और बल में बढ़ते मथे। उषर हालाचार्य ने जब औरबा और पाइयों को अस्त्र-शस्त्र की प्रिया हैनी आरभ की तो कर्ण भी उनका साथ कुछ-कौशल में रक्ष हो गया। विशेष प्रतिस्पर्धा उसकी अमृत क साथ रहती और पारंगिया क लिए भी यह कहना कठिन था कि दोनों में कौन श्रेष्ठ है।

एक समय राजकुमारों के बल-कौशल क प्रदर्शन के लिए एक रंगभूमि की रचनी की गई। इसमें अर्जुन ने तोर फेंकते रच बनाते आदिक प्रदर्शन में माती सभा को बहिर कर दिया और उनकी सब ओर से प्रशंसा होने लगी। कर्ण को अर्जुन का सोरु-यम घबड़ा हा गया। उनका अमृत को बुनीती ही और रंगभूमि में हो उनसे लड़ने को तैयार हो गया। उस समय के निषर्मा क अनुमार राजकुमार राजकुमारों से ही प्रतिमादिता करते थे। मुकुर कपाचार्य ने कर्ण से अपना बंध-परिषय बन क लिए कहा। कर्ण तो शारीर का पालित पुत्र भर था अपना क्या परिषय होता बहुत सज्जन हुआ। दुर्वोधन को कर्ण एम योजा का अपनी ओर कर मन का प्रच्छा अमर मिमा। उमन उनका मूल-बंधीम कमक धान क लिए उस अवरोध का राजा पालित कर दिया। इसी से कर्ण का घंटा राज भी कहा जाता है। अर्जुन प्रतिमादिता क लिए तैयार नहीं हुए और इसी समय से कर्ण दुर्वोधन का मित्र बन गया और उमन तथा दुर्वोधन का साथ देने की प्रतिज्ञा की। यह पहला अमान या जा कर्ण का मृतपुत्र होने के कारण सहना पड़ा।

दूसरा अमान उनका डोरी स्वयंवर क समय हुआ। डोरी स्वयंवर में आस्था की बड़ी बहिन अपने रानी गई थी। उसमें कर्ण भी गया था।

ज्यों

साक्षाद्गुरु से अपने प्राण बचाकर भागनेवाले पांडव भी उसमें ब्रह्मचारी-मुनियों के रूप में गए थे। परंतु कर्ण जिस समय लक्ष्मणसे के लिए उद्यत हुआ उस समय द्रौपदी ने उसके सूठ-पुत्र होने के कारण अपना जन्मक बपन कहकर उसे बरख करने से इन्कार कर दिया। घट में प्रज्वलित लक्ष्मणसे किया और द्रौपदी ने उनके गले में जयमाल डाल दी। घावे बलकर कुंती के मुख से एक ऐसी बात निकल आई कि वह पाँचों पाण्डवों की पत्नी मानी गई।

अपने समुद्र दुपह की सहायता से जब युधिष्ठिर को हस्तिनापुर का राज्य मित्रा और उन्होंने राजसूय यज्ञ करने की तैयारी की तब चारों दिशाओं के राजाओं को पराजित करने और उनसे कर वसूल करने के लिए युधिष्ठिर के चारों भाई चार दिशाओं में गए। भीम पूर्व में गए जिससे कर्ण का धर्म-रत्न का राज्य था। कर्ण और भीम का बड़ा बोर संघाम हुआ परंतु अपनी शान बीछा के कारण अब वह अपना कबच-कुंडल छोड़कर था जो उस प्रजेय बनाता था। कर्ण ने पराजय स्वीकार की और राजसूय यज्ञ में धर्म राजाओं के समान ही भागा।

कौरवों और पांडवों का युद्ध बर्म और शर्म का युद्ध था। कर्ण ऐसे प्रजेय मोटा को कौरवों की ओर, शर्म की ओर, जाते देखकर शत्रुताओं में चिता धा गई। इंद्र ने सोचा किसी न किसी प्रकार कर्ण से समुद्रोद्भूत कुंडल-कबच में लेना चाहिए। एक दिन इंद्र बाह्यण का वप बनाकर कर्ण के सामने पहुँच गया। कर्ण के मन में बाह्यण के लिए बड़ा सम्मान था और उसके पास कुछ भी ऐसा न था जो बाह्यण के लिए प्रिये हा। इंद्र कर्ण की यह उदारता जानता था उसने इसी कबच-कुंडल की याचना की। कर्ण ने अपना कुंडल और अपनी लंबा से जुड़े हुए कबच को खंडन से काटकर प्रसन्न किया और बाह्यण को दान कर दिया। उसके मन में न किसी प्रकार का खेद हुआ न परधाताप उसे वह बहुत प्रसन्न हुआ कि उसने बाह्यण का वपन पाली नहीं किया। कर्ण के उस धादश दान से इंद्र बड़ा प्रसन्न हुआ और उगन कबच-कुंडल के बर्म उस 'पक्षि' नामक एक प्रमोद प्रसन्न किया। उस वह कबच एक ही बार छोड़ सकता था पर जिसपर वह धिरेया उसका धरप हो छहार कर देना पाहे वह कितना ही पक्षिवासी पुर क्यों न हो। मगर इस पक्षि के बाद कर्ण किसी भी आपारण योजा के समान अपने ही धर्म-विक्रम पर निर्भर

खेता । कर्ण इस शक्ति को बड़े यत्न से संचित रखता था क्योंकि उसने सोचा था किसी दिन वह इसे धर्म पर छोड़ेगा । इसी कारण भीम से हार मानकर वह राजसूय में धाया ता पर भीतर ही भीतर जलता हुआ ।

राजसूय के शीघ्र बार ही युधिष्ठिर अपना राज-माट अपने भाइयों की घोर अपनी पत्नी को भी गुए में हार गए । चायव उस घबराहट पर पांडवों और द्रौपदी के प्रति भी जिसने कटु शब्द कहे न कहे उनमें किसी घम्य न महीं । उसे रंभजूमि घोर उससे भी अधिक स्वयंवर में द्रौपदी के अपमानजनक बचनों की याद थी । पांडवों और द्रौपदी के बरब उतरवाने की सहाह कर्ण ने ही दुष्सासन को दी थी । उसीने द्रौपदी को हाथी तथा उसने दूमरा पति दुर्गम की बात कही थी ।

पांडव जब बारह बर के बरबास घोर एक बर के घजातबास के निरु निकल गए तो कर्ण को अपनी शक्ति घोर प्रभाव बढ़ाने का पुरा अवसर मिला । उसने हिमिजव की घोर हस्तिनापुर में उनका बड़ा स्वागत-सत्कार हुआ ।

जब पांडवों के बरबास से लौटने पर महाभारत की तैयारी होने लगी घोर दोनों दल अपने-अपने पक्ष में राजाघों को मिलाते मने तब भयवान कृष्ण ने कर्ण का बहुत सबझझा पर उनका दुर्वोषन का पक्ष ग्रहण करने की निर झनी । कृष्ण उसकी शक्ति जानते थे घोर उसकी कमबोरी भी । घम्य का भी भयवान कृष्ण पांडवों की घोर माना चाहते थे पर वह दुर्वोषन से प्रतिज्ञाबज हा हुआ था । उसने कर्ण के शारयो बनने का कार्य अपने ऊपर मिला था । भयवान कृष्ण ने घम्य से कहा 'तुम कर्ण के शारयी अवश्य बनो, मगर देखो कर्ण जब-जब घम्य योजनाओं से अपनी गुलना कर घामप्रघसा कर तब तुम उसकी ही में ही मिताना पर बीच-बीच में यह कहते रहना कि केवल धर्मन से मुझे डर है । इसी संका भी कर्ण को भीतर से दुर्बल बना रही ।

महाभारत के मुठ में कई बार वह कई योजनाओं से पराजित हुआ पर उसने अपनी शक्ति धनुष पर छाड़ने की मुरजित रखी । भयवान कृष्ण तब तक धनुष को उससे निरवधारक मुठ नहीं करने देना चाहते थे जब तक उसके पास यह शक्ति रहे । संत में उन्होंने बरोदकच का सामना कर्ण से करा दिया । बरोदकच हिमिजा से उत्पन्न भीम का पुत्र था घोर महापराक्रमी था—दानव

मावक-देवता के रक्त-वीर्य-संघ से उत्पन्न । बटोत्कच ने कर्ण के साथ और सन्नाम किया और कर्ण को सवा कि अपने प्राण बचाने को उसे प्रतिम धर्म का उपयोग करना पड़ेगा । वह धर्म नमते ही बटोत्कच डेर हो गया और कर्ण निःशब्द फिर भी वह अपने पराक्रम से लड़ने को तैयार हुआ । केवल भीम और धर्म का छोड़ उसने मकुत सहदेव युधिष्ठिर समेत अपनेकानेक कीर्तियों को पराजित किया । धन में धर्म के साथ उसका द्वेष पुनः हुआ । पुनः करते-करते ध्यानक उनके रक्त का पश्चिम जमीन में बँस गया । उसे निकालने के लिए वह रक्त से बीजे उठता । उनका धर्म से धनुरोध किया कि जब तक वह फिर से रक्त पर घाहीन न हो जाय तब तक वह उसपर बाण न चलाए, परंतु धनवान् कर्ण का भारी कुछ और ही था ।

कर्ण की मृत्यु के पश्चात् जब पांडवों को उसके साथ अपना सबका मातुल हुआ तो वे बहुत दुःखी हुए । वह तो उनका सहोदर भाई ही था । पांडवों ने विनियत उसका श्राद्ध-स्मरण किया और उसकी पत्नी उसके बच्चों तथा उसके धर्मियों की रक्षा की । कृती की देवता सहस्रियों की कल्पना पर ही छोड़ना चाहिए । उसके एक पराक्रमी पुत्र ने दूसरे पराक्रमी पुत्र का वध किया । पर धन और धर्म के पुनः न ऐसा होना ही था । महाभारत में उसका संकेत है कि कर्ण नरकामुर का अवतार था ।

मृत्यु के पश्चात् कर्ण स्वर्ग जाकर सुवर्ण में लीन हो गया ।

हिन्दी में कर्ण के ऊपर दो प्रसिद्ध-ग्रन्थ हैं । एक श्री धर्मच कुमार का लिखा 'धर्मच' और दूसरा श्री दिनकर का लिखा 'रतिरस' । श्री मन्मोहनरायण मिश्र कर्ण पर एक महाकाव्य लिख रहे हैं । उसका कुछ पंथ उन्होंने पढ़ा-करा सुनाया तो था । महाकाव्य का प्रकाशन धीमे धीमे तक नहीं हो सका ।

[१८९१]

मानव-देवता के राज-वीर्य-मंडल से उत्पन्न । बटोल्कच ने कर्ण के साथ घोर सघाम किया और कर्ण को लगा कि अपने प्राण बचाने की उसे प्रतिम सक्ति का उपयोग करना पड़ेगा । वह सक्ति मगते ही बटोल्कच डर हो गया और कर्ण निश्चिंत फिर भी वह अपने पराक्रम से सबने को तैयार हुआ । केवल भीम और धर्मन को छोड़ उसने नकुल सहदेव युधिष्ठिर समेत धनकाकेक भीरु को पराबित किया । घात में धर्मन के साथ उसका ईश्वर युद्ध हुआ । कुछ कठो-कठो घबरातक उत्तम रथ का पहिया जमीन में धँस पड़ा । उसे निकालने के लिए वह रथ से नीचे उतरा । उसने धर्मन से धनुरोध किया कि अब तक वह फिर से रथ पर घासीन न हो जाय तब तक वह उसपर बाण न चलाए, परंतु नयवान हथियार का आदेश कुछ और ही था ।

कर्ण की मृत्यु के पश्चात् जब पांडवों को उसके साथ घटना सबब मालूम हुआ तो वे बहुत दुःखी हुए । वह तो उनका सहोदर भाई ही था । पांडवों ने विपिबत उसका बाह्य-भस्कार किया और उसकी पत्नी उसके बन्धों तथा उसके प्राधियों की रक्षा की । कृती की वेदना सहस्रों की कम्पना पर ही छोड़ना चाहिए । उसके एक पराक्रमी पुत्र ने दूसरे पराक्रमी पुत्र का वध किया । पर वध और घबरा के युद्ध में ऐसा होना ही था । महाभारत में उसका संकेत है कि कर्ण नरकामुर का प्रवर्तार था ।

मृत्यु के पश्चात् कर्ण स्वयं जाकर सूर्यदेव में लीन हो गया ।

हिन्दी में कर्ण के ऊपर दो प्रसिद्ध-काव्य हैं । एक श्री धानंर कुमार का लिखा 'प्रवरज' और दूसरा श्री बिनकर का लिखा 'रक्षिरपी' । श्री लक्ष्मोनायकस्य मिथ कर्ण पर एक महाकाव्य लिख रहे थे । उसका कुछ प्रबंध उन्होंने पत्र-कटा मुनाया भी था । महाकाव्य का प्रकाशन थायर धभी तक नहीं हो सका ।

[१९११]